मानस प्रबोधिनी

बाल काण्ड

व्याख्याकार
मानस महारथी त्यागी

मानस प्रबोधनी

बाल काण्ड

भाग १

व्याख्याकार

मानस महारथी त्यागी

प्रकाशक

इन्टरनेशनल रामचरित मानस मिशन,

इलाहाबाद

प्रकाशक
इन्टरनेशनल
रामचरित मानस मिशन
इलाहाबाद

●

●

प्रथम संस्करण
५००० प्रतियाँ

●

मुद्रक
पियरलेस प्रिन्टर्स
१, बाई का बाग, इलाहाबाद

●

मूल्य : ४.०० रु० मात्र

परम योगेश्वर भक्त राज श्री हनुमान जी महाराज
ग्राम नांदी के श्री चरणों में
सादर समर्पित
मानस महारथी त्यागी

अयोध्या :
मंगलवार, राम नवमी सम्वत २०३४ वि०

मानस महारथी त्यागी

दो शब्द

द्वापर युग के अन्त में महाभारत के युद्ध क्षेत्र में खड़े होकर युगपुरुष, राजनीति एवं कूटनीति के महान् पंडित योगिराज भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता जैसे महान् ग्रन्थ के उपदेशात्मक श्लोक तत्कालीन परिस्थितियोंवश तथा संसार के कल्याणार्थ स्वतः प्रस्फुटित हुए जिसके श्रोता महाभारत के एक महान वीर अर्जुन थे। मानवीय कर्मों का उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन—

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

समय की ठोकरों से दुखित साधु सज्जनों को संरक्षण प्रदान करने के लिये, धर्म के विपरीत होने वाले दुष्कृत्यों, दुराचरणों, को समाप्त करने के लिए और सद्धर्म की स्थापना करने के लिये मैं प्रत्येक युग में अवतार धारण करता हूँ। महाभारत काल में बढ़े हुए पापाचार, दुराचार, अनाचार महाभारत युद्ध के अन्त तक समाप्त हुए और सद्धर्म की पुनः स्थापना हुई।

यह सर्वमान्य सिद्ध है कि जब हम अपने कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं और पथ-भ्रष्ट होकर अनाचारों में फँस जाते हैं तब मानव समाज को सद्धर्म पालन, उच्च आचरण और कर्त्तव्य-निष्ठ होने की शिक्षा तथा प्रशिक्षण देने के लिये ईश्वर स्वयं एक आदर्श पुरुष के रूप में अवतार धारण करता है और अपने अनुकरणीय चारित्रिक महानता के माध्यम से हमें सन्मार्ग, धर्माचरण की शिक्षा देता है। ठीक ऐसी ही शिक्षा हमें श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा आदि महान् पुरुषों के जीवन चरित्र से मिलती है जिनका जीवन चरित्र अनुकरणीय रहा और कालान्तर में समाज ने उन्हें ईश्वर का साक्षात् अवतार माना।

ईश्वर स्वयं अवतार धारण करने के अतिरिक्त ऐसे महान् व्यक्तियों को भी इस संसार में विशेष सद्गुणों एवं विशेष काव्य शक्तियों से ओत-प्रोत करके, अपना सिंदौसी बनाकर भेजता है जो अपनी रचनाओं के द्वारा, काव्य चमत्कारों के द्वारा ईश्वर द्वारा स्थापित सद्धर्मों का प्रचार करते हैं, अपनी महान् कृतियाँ संसार को सदा सर्वदा के लिये सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय अनुसरण करने के लिये छोड़ जाते हैं जिसके अनुसरण से क्षुद्रतम प्राणी भी इस अथाह संसार सागर से पार हो जाते हैं तथा अपने साथ ही साथ हजारों लाखों के जीवन को भी कृतार्थ कर देते हैं।

अंग्रेजी के महान कवि मिल्टन की भी यही धारणा उनके पैराडाइज लास्ट नामक

प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ में मिलती है और जिन्होंने ईश्वर के इस उपर्युक्त सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है।

भगवत कृपा के पात्र महान् कवियों का संसार में आगमन और अपनी रचनाओं द्वारा ईश्वर के संदेशों के प्रचार कार्य का एक और उदाहरण महाकवि कालिदास का जीवन चरित्र और उनकी रचनाएँ भी उद्धृत करने योग्य हैं। काली नाम का महान् मूर्ख व्यक्ति जो जिस डाल पर बैठा है और उसी को काट भी रहा है, अपनी पत्नी विद्योत्तमा द्वारा तिरस्कृत किये जाने और महान् मूर्ख की उपाधि से विभूषित किये जाने और कोठे से ढकेल दिये जाने पर भगवती के वरदान से संस्कृत भाषा का महान् शृङ्गारिक कवि हो गया; उन्हीं महाकवि कालिदास की अनुपम शृङ्गारिक रचना अभिज्ञान शाकुन्तलम् का जर्मनी के महाकवि गेटे के द्वारा अंग्रेजी भाषा में भाषान्तरित किये जाने के फलस्वरूप भारतवर्ष के एक शिष्ट एवं विद्वान पूर्ण देश होने की क्रान्ति सारे यूरोप में मचा दिया। भगवती का वरदान तथा कवि की महानता ने विश्व में भारत की सम्यता, संस्कृति और विद्वत्ता जो विदेशों में अज्ञात प्राय हो गई थी और भारत अशिष्ट तथा जंगली देश माना जाने लगा था, ऐसी जबर्दस्त क्रान्ति लाकर भारत को गणमान्य शिष्ट देशों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। यह होता है ईश्वरीय कृपा के पात्र महाकवियों की जीवनी, उनकी कृतियों का प्रभाव तथा फल।

ईश्वर के अनेकानेक अवतारों में इच्छ्वाकु के आदि राजा महाराज मनु जो कालान्तर में अगले जन्म में अयोध्या के महाराज दशरथ के रूप में पैदा हुए, उनके बड़े पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र महारानी कौशल्या से अवतरित हुए। भारतवर्ष के महर्षि वाल्मीकि एक व्याध द्वारा नर क्रौंच पक्षी के आहत किये जाने पर उसके करुण क्रन्दन से सद्यस्नात आदि कवि वाल्मीकि का हृदय द्रवीभूत हो गया और उनकी वाणी से यह श्लोक स्वतः प्रस्फुटित हो गया........

"मा निषाद् प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वती समा:।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधी: काम मोहितम्॥

महर्षि ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम जो महाराज रघु के वंश में श्रेष्ठतम राजा रहे, जिनका आद्योपान्त जीवन चरित्र महान्तम मर्यादाओं से ओत-प्रोत रहा, उनके चरित्र का मंगल गान किया और महान् ग्रन्थ रामायण की रचना की।

युगान्तर में जब संस्कृत भाषा का लोप होने लगा, धर्म पर अनेकों प्रकार के अत्याचार होने लगे, धर्मग्रन्थ लुप्त होने लगे, मानव समाज पथभ्रष्ट होने लगा, लोग कर्त्तव्याकर्त्तव्य भूलने लगे, समाज अनाचार-पापाचार के गर्त में डूबने लगा तब ईश्वर जो साधु पुरुषों को जिन्हें ऐसी कठोरतम व विषम परिस्थितियों के खिलाफ शान्तिमय प्रचार की शक्ति प्रदान करता है, मुगल-कालीन सूर, मीरा आदि महान् भक्त सन्तों में एक महान् सन्त तुलसी को जन्म दिया। अत्याचारों केकुप्रभाव से लोप हो रहे धर्माचरण, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, मानवीय मर्यादाएं, ईश्वरवाद की आस्थाएं, नारी समाज के दुराचरण आदि से प्रभावित होकर ईश्वर के महान् सिदौसी सन्त तुलसीदास ने श्रीराम चरित्र का गुणगान भारत की अवधी भाषा में सर्वजनसुखाय सर्वजन हिताय, नारी समाज को चारित्रिक शिक्षा, राजा-प्रजा को राजनीति की उत्तमोत्तम आदि शिक्षायें देने के

लिये भारतीय वातावरण के अनुकूल समस्त वेदों शास्त्रों तथा धर्मग्रन्थों के निष्कर्षों का दोहन करके भगवान श्रीराम के चरित्र को माध्यम बनाकर श्रीरामचरित मानस की रचना किया और संसार के सभी प्राणियों को वह चाहे किसी जाति, कुनबा अथवा देश का हो कर्त्तव्य पालन की उत्तमोत्तम शिक्षा दिया। श्री गोस्वामी जी की यह रचना हिन्दी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह २४ गुणों, नौ रसों और आठों अलंकारों से युक्त है तभी तो हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने श्री गोस्वामी जी के लिए लिखा है—

'सूर शशि तुलसी रवि उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहं तहं करहिं प्रकाश॥

वर्तमान् समय में यो तो रामचरित मानस के अनेक विद्वान हैं जो श्रीराम के चरित्र का प्रचार भारत तथा कुछ विदेशों में कर रहे हैं परन्तु सूक्ष्मतम विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला जाना असामयिक न होगा कि या तो उनकी भाषा पांडित्यपूर्ण क्लिष्ट है जो सर्वजन सुखाय नहीं हो पाती है और फिर तब सर्वजन हिताय भी नहीं हो सकती और या तो उन्हें रामचरित मानस का आद्योपान्त ज्ञान नहीं है सिवा कुछ स्थलों के जिसको वे अपनी ख्याति और धन कमाने का साधन बनाए बैठे हैं। ऐसे ही दोष अनेकों प्रचारकों तथा प्रवक्ताओं में पाए जाते हैं।

मानस महारथी श्री १००८ श्री त्यागी जी महाराज जो श्रीरामचरित मानस की आद्योपान्त भावपूर्ण समीक्षात्मक व्याख्या कर रहे हैं उनके अन्दर जो मैंने विगत वर्षों में प्रयाग माघ मेले के प्रवचनों से अनुभव किया वह यह है कि श्रीरामचरित मानस की आद्योपान्त समीक्षात्मक व्याख्या करने का अपूर्व ज्ञान विद्यमान है। यह क्षमता उनमें अद्वितीय है। भारत में शायद एकाध ही ऐसे विद्वान् हों जिनमें मानस की आद्योपान्त व्याख्या करने का ज्ञान हो, परन्तु विशेषता यह है कि यह व्याख्या जो पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रही है उसकी भाषा इतनी सरल है कि वह बहुजन हिताय बहुजन सुखाय होने के बजाय सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय सिद्ध होगी और प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह उच्च शिक्षित हो अथवा अल्प शिक्षित हो बहुत आसानी से समझ सकता है।

श्री त्यागी जी महाराज द्वारा जीवनपर्यन्त की गई भगवद् आराधना तथा श्री हनुमान जी द्वारा प्राप्त कृपा, इस सरल हिन्दी भाषा में मानस टीका 'मानस प्रबोधिनी' और बाद में अंग्रेजी तथा संसार की प्रमुख भाषाओं में भाषान्तरित कराकर समस्त संसार के प्राणियों को सन्मार्ग पर लाने की पवित्र भावना और साहित्यिक प्रचार के माध्यम से जन सेवा करने की उत्कट अभिलाषा, फलीभूत होकर संसार में आवे और श्री गंगा जी के समान समस्त पापहारिणी हो तथा इस कलिकाल में उद्धार का अद्वितीय साधन हो।

एक ओर कलियुग का प्रभाव समय के साथ-साथ बढ़ता जा रहा है। नई पीढ़ी में उच्छृङ्खलता का प्रवाह अधिक है। भौतिकवाद अधिक जोरों पर है। अध्यात्मवाद और ईश्वरवाद में कुछ अधिक शिक्षित वर्गों में विश्वास कम हो गया है। ऐसे समय में दूसरी ओर यह भी देखा जा रहा है कि श्री रामचरित मानस का प्रचार और उसमें विश्वास भी जोर पकड़ रहा है और मानस प्रेमियों और मानस पाठकों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसे समय

में आवश्यकता है कि मानस की गहराइयों और गूढ़तम भावों का मन्थन हो। मन्थन करने की क्षमता पांडित्य द्वारा प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य है ही परन्तु यह क्षमता किसी समाज सेवी सन्त में ही हो सकती है, क्योंकि रामचरित मानस की रचना एक महान् सन्त गोस्वामी श्री तुलसी दास जी महाराज द्वारा की गई है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि श्री त्यागी जी महाराज का यह प्रयास श्री हनुमान जी की कृपा से पूर्णतः सफल होगा और मानस प्रबोधनी सर्वजन सुखाय व सर्वजनहिताय सिद्ध होगी। इसी दृढ़ विश्वास के आधार पर मैं पाठकगण से प्रार्थना करता हूँ कि इसे एक भारतीय महान् योगी सन्त के आशीर्वाद सदृश ग्रहण करें और भगवान श्री राम की लीलाओं को हृदयंगम करके परमानन्द प्राप्ति का सुख अनुभव करें तथा तार्किक विद्वत्ता में पड़ कर चकरायी बुद्धि पर पड़े पर्दे को हटाकर उसे प्रकाशित करें ताकि तभी ये योगी सन्त अपनी साधना को सार्थक समझें और हम अपने को धन्य।

निवेदक
दुर्गा प्रसाद

श्री हनुमान जी का मंदिर
नांदी (बाँदा)
मंगलवार, ६-१२-७७

मेरा जीवन तथा मेरी इच्छाएँ

२२ अक्तूबर, १६३३ को बिहार प्रान्त के मुंगेर जिला में मेरा जन्म हुआ। मेरे चाचा एक अध्यापक थे। उन्हीं के स्कूल में पढ़ता था। मेरे अध्यापक चाचा प्रायः मेरे घर आया करते थे। मेरी माँ बड़ी थीं। अध्यापक चाचा जी बहुत छोटे थे। अध्यापक चाचा और मेरी माँ प्रायः बैठकर बातचीत किया करते थे। उस बातचीत के दौरान प्रायः मेरी माँ यह कहा करती थीं कि हलधर यदि रामायण पढ़ने लग जाय तो मैं समझूँगी कि मेरा बेटा विद्वान हो गया है। यह हलधर नाम मेरा ही था। मेरी माँ बहुत भोली थीं। उन्हें रुपया नहीं गिनना आता था। केवल बीस तक गिनना जानती थीं परन्तु बहुत रुपया माँ के पास रहता था इसलिए कभी-कभी मुझसे गिनवाती थीं। मैं बचपन से ही बहुत चालाक था इसलिये कभी-कभी उसमें से एकाध रुपया चुरा लिया करता था। एक मेरी चचेरी भाभी थीं जो पढ़ी-लिखी थीं। हमारी और उन भाभी की बहुत लड़ाई हुआ करती थी। लड़ाई का कारण यह था कि भाभी मुझसे कहती थी तुम बहुत मीठे हो इसलिये तुम हलुवा हो। इससे मैं नाराज होकर भाभी को मार देता था। तब अपना बदला लेने के लिये वह भाभी माँ से शिकायत कर देती थीं कि माँ हलधर ने आपका रुपया चुरा लिया है। तब मेरी माँ दण्ड के रूप में मुझसे रामायण पढ़वाती थीं और कहती थीं देखो हलधर! मैं कृष्ण भक्त नहीं मैं राम भक्त हूँ इसलिये तुम जब कभी-कभी मेरे रुपये चुरा लिया करते हो यह मुझे अच्छा नहीं लगता है। मैं तो तुमको राम भक्त बनाना चाहती हूँ। तब मैं माँ से पूछता था कि माँ कृष्ण और राम में क्या अन्तर है। तो माँ बताती थीं कि बेटा कोई अन्तर नहीं है परन्तु हँसती हुई माँ कहती थीं कि कृष्ण माखन चोर थे। गोपियाँ रोज ही यशोदा को उलाहना देने आती थीं इसलिये मेरी इच्छा है कि तुम्हारा जीवन श्रीराम की तरह हो।

इस प्रकार राम भक्ति के उपदेश मेरी माँ मुझे बचपन से दिया करती थीं। और भी बहुत सी घटनायें हैं जिन्हें अलग से फिर लिखा जायगा।

मैं अपने माता-पिता का अकेला ही था, वैसे परिवार बहुत बड़ा था। मेरे बचपन में ही प्रथम पिता का और बाद में माता का देहान्त हो गया। पिता के देहान्त का मुझ पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु माँ के देहान्त का मुझे बहुत दुख हुआ उस समय मेरी अवस्था लगभग १३ साल की थी। मैं घर से भाग गया। दो वर्षों तक इधर-उधर भटकने के बाद १५ वर्ष की अवस्था में मैं साधु बन गया। मेरे गुरु जी का नाम श्री श्री १०८ श्री स्वामी रामसेवक दास जी महाराज है। मैं श्री स्वामी रामानन्दाचार्य सम्प्रदाय का साधु हूँ। माँ की

कृपा से बचपन से ही मेरे मन में रामायण के प्रति प्रेम हो गया था। अतः साधु बनने पर नियमित रूप से प्रतिदिन रामचरित मानस का पाठ करता था। एक बार सन् १९५६ में मैं रथ यात्रा के अवसर पर पुरी जगन्नाथ गया था। पुरी में छोटी छत्ता नाम का स्थान है वहीं ठहरा था। उस समय वहाँ मानस सम्मेलन चल रहा था। उस सम्मेलन में पं० श्री रामकुमार दास जी महाराज जो आजकल अयोध्या में मणि पर्वत पर रहते हैं, आए थे। प्रथम दिन ही मैंने उनका प्रवचन सुना और बहुत प्रभावित हुआ। ऐसे तो मेरे घर पर प्रायः राम कथा हुआ करती थी परन्तु उस समय मेरी अवस्था बहुत कम थी शायद इसीलिए ऐसा प्रभाव मेरे जीवन पर पहले कभी नहीं पड़ा था। परन्तु पं० श्री रामकुमार दास जी का बहुत ही प्रभाव मेरे मन पर पड़ा और तब मैंने निश्चय किया कि मैं भी रामचरित्र का विद्वान बनूंगा और उसी समय से पं० श्री रामकुमार दास जी महाराज को मैं अपना प्रेरक गुरु मानता हूँ। साथ ही मुझे बचपन से ही योग के प्रति बहुत लगाव रहा है। योग के प्रति मेरे मन में कैसे प्रेम उत्पन्न हुआ है और क्या-क्या घटनाएँ घटी हैं। इसी विस्तृत जीवन परिचय में कभी लिखा जायगा। अब आइये श्रीराम चरित्र की ओर। मैंने कभी अयोध्या में रहकर या किसी सन्त के पास रहकर रामचरित्र का अध्ययन नहीं किया है। मुझे तो श्री हनुमान जी की कृपा से ही कुछ रामचरित्र का ज्ञान हुआ है और उन्हीं की कृपा से प्रवचन भी करता हूँ। हाँ एक विशेष बात और भी लिख दूँ जिसका सम्बन्ध मेरी इच्छाओं से है। मेरा एक घर कलकत्ता में भी था। मेरे पिता जी अधिकतर कलकत्ता में ही रहते थे। इसलिये माँ जब कभी कलकत्ता जाया करती थीं तब मैं भी माँ के साथ जाता था और वहाँ कुछ समय तक रहता था। इसलिये यद्यपि मेरी मातृ-भाषा मैथिल थी परन्तु मैं बंगला भी जानता था। मेरे पिता जी मैथिल होने के कारण रामभक्त तो थे ही परन्तु कलकत्ता में रहने के कारण रामकृष्ण मिशन से उनका बहुत प्रेम था इसलिये प्रत्येक रविवार को रामकृष्ण मिशन में जाया करते थे। एक बार मैं भी पिता जी के साथ रामकृष्ण मिशन में गया। उस दिन वहाँ कोई महात्मा बंगला में उपदेश कर रहे थे इसलिये मुझे बहुत अच्छा लगा। बीच-बीच में वे महात्मा अँग्रेजी के शब्द बोलते थे जो मैं नहीं समझता था परन्तु जब प्रवचन समाप्त हो गया तो रास्ते में लौटते समय मैंने पिता जी से पूछा कि वे महात्मा बीच-बीच में क्या बोलते थे। पिता जी ने कहा कि घर चलो तो मैं सब तुमको समझाऊँगा क्योंकि उस समय सड़क पर बहुत भीड़ थी और पिता जी स्वयं अपनी कार चला रहे थे इसलिये मेरे बार-बार पूछने पर पिताजी ने कहा कि घर पर ही तुमको समझाऊँगा रास्ते में नहीं। घर में पहुँचने पर भोजन तैयार था इसलिये पिता जी की इच्छा थी भोजन के बाद मुझे समझाने की परन्तु मैं बहुत जिद्दी प्रकृति का था और कुछ भूलता भी नहीं था इसलिये मैं जिद्द पकड़ गया कि पहले मुझे बताइये। इसलिए पिता जी ने मेरी माँ को और मुझे बिठा कर जो कुछ प्रवचन में सुना था सब समझाया। उसी दिन स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन से और उनके कार्यों से मैं परिचित हुआ और मेरे मन में भी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी साधु बन कर भविष्य में धर्म का प्रचार करूँगा और उस दिन मैं इतना प्रभावित हो गया कि माँ के बहुत प्रयास करने पर भी मैंने भोजन नहीं किया और सो गया।

अब जब कभी उस घटना को याद करता हूँ तो ऐसा लगता है कि जीव के हृदय में ईश्वरीय प्रेरणा से ही शुभ कर्म करने की इच्छा प्रकट होती है। उस समय का वह धर्म प्रचार करने का संकल्प साधु बनने पर तो और भी प्रबल हो उठा परन्तु मेरे सामने यह समस्या थी कि मैं किस माध्यम से सनातन धर्म का प्रचार करूँ। इसी बीच में सन् १९५६ में पं० श्री रामकुमार दास जी का प्रवचन सुनकर पूर्णरूपेण तुलसीकृत श्री राम चरित की ओर आकर्षित हो गया। और निश्चय किया कि बस सर्व जन सुखाय सर्व जनहिताय श्री राम चरित मानस से बढ़कर इस वर्तमान समय में और कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं हो सकता है। साथ ही बचपन से ही माँ की कृपा से श्री राम चरित मानस से प्रेम तो था ही, विशेषरूप से साधु बनने पर तो दैनिक पाठ करता था और कभी-कभी प्रेमीजनों के एकत्रित होने पर कथा भी सुनाया करता था। इसलिये उस समय तक श्रीराम चरित मानस करीब-करीब मुझे याद हो गया था। अब प्रश्न था रामचरित मानस का विद्वान बनना और उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार करना। इसके लिये दैवी शक्ति की आवश्यकता थी। माँ की कृपा की तरह से ही जन्म से ही मुझ पर श्री हनुमान जी की कृपा रही है। अतः १९५७ के शरद् नवरात्रि के प्रथम दिन से कार्तिक पूर्णिमा तक की तुच्छ सेवा से ही हनुमान जी की विशेष कृपा मुझ पर हो गई और तभी से मैंने मानस प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया परन्तु सन् १९६१ में हनुमान जी की आज्ञा हुई कि तुम कुछ संस्कृत का अध्ययन भी कर लो। उस समय मैं देहली में था। संयोग से उस समय एक संस्कृत के विद्वान पं० श्री कृष्णदत्त शास्त्री जो इस समय सहादरा, देहली में रहते हैं उनसे भेंट हो गई। उनसे मैंने प्रार्थना की कि मैं संस्कृत पढ़ना चाहता हूँ। यह सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसी दिन से कुछ संस्कृत के शब्द याद कराना शुरू कर दिया। उसी बीच में माघ मेला का समय आ गया और मुझे प्रयाग आना पड़ा। परन्तु मेरी इच्छा संस्कृत पढ़ने की प्रबल थी। अतः प्रयाग में पं० श्री राम खेलावन शास्त्री जो किशोरी लाल वेणी माधव संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य हैं, उन्होंने मुझे लघु कौमदी आरम्भ कराया। माघ मेला समाप्त होने पर पुनः मैं देहली चला गया और वहाँ पं० कृष्णदत्त शास्त्री के सहयोग से रामदल संस्कृत महाविद्यालय दरीवां कला में पं० श्री दीना नाथ सारस्वत जो उस समय वहाँ के प्रधानाचार्य थे, उनसे पुनः मैंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया। पं० श्री दीना नाथ सारस्वत जो संस्कृत जगत के अद्वितीय विद्वान हैं वही मेरे विद्या गुरु हैं उन्हीं की कृपा से कुछ संस्कृत का ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार संस्कृत का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के बाद पुनः मैंने तेजी से श्रीराम चरित मानस का प्रचार आरम्भ कर दिया। इसी बीच सन् १९६८ में एक अमेरिकन व्यक्ति मुझे कुलू हिमांचल प्रदेश में मिला। मैंने उसे योग की दीक्षा दिया। वही कुछ महीने के बाद प्रयाग माघ मेला में आकर मुझसे विधिवत् गुरु दीक्षा प्राप्त किया और मैंने उसका नाम रामदास रखा। उसी के साथ एक और भी अमेरिकन आया था उसे भी गुरु दीक्षा दिया और उसका नाम लक्ष्मणदास रखा। इस प्रकार रामदास और लक्ष्मणदास के द्वारा अमेरिका से मेरा सम्बन्ध जुड़ गया। उसके बाद तो समय-समय पर बहुत से अमेरिकन आते रहे और मैं उन्हें योगिक क्रियाएँ सिखाता रहा। इस प्रकार समय बीतता गया और समय के साथ-साथ

अमेरिका में मेरा प्रचार बढ़ता गया। २४ मई सन् १९७५ को रामदास के सहयोग से मैंने अमेरिका की प्रथम यात्रा की। प्रथम यात्रा में कुछ भारतीय प्रवासी जो अमेरिका और कैनाडा में रहते हैं उनके मध्य में मैंने मानस का प्रवचन दिया और रामदास के द्वारा अमेरिकन लोगों में भी कुछ रामचरित का प्रचार किया परन्तु विशेष अनुभव तो दूसरी यात्रा में हुआ क्योंकि इस बार कुछ ऐसे लोगों में मानस का प्रवचन करने का अवसर मिला जो आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व भारत से मजदूर के रूप में दक्षिणी अमेरिका चले गए थे और अब वे वहीं के नागरिक हो गए हैं। उनमें से अधिकांश पूर्वी उत्तर प्रदेश और कुछ बिहार के लोग हैं इसलिये श्रीराम चरित मानस से उनका स्वाभाविक प्रेम है। यद्यपि उन्हें भारत छोड़े लग-भग सौ वर्ष हो गए हैं फिर भी उनके भी मन में भारतीय संस्कृति के प्रति अपार स्नेह है परन्तु दुःख की बात यह है कि उनमें से युवा पीढ़ी के लोग अपनी मातृभाषा अवधी, भोजपुरी या हिन्दी भूल गए हैं। अब तो विशेष रूप से उनकी भाषा अंग्रेजी हो गई है। इसीलिए अब यदि उन्हें भारतीय संस्कृति की शिक्षा समय-समय पर नहीं मिली तब वे भारतीयता को भूल जायेंगे। इसी प्रकार केवल दक्षिणी अमेरिका में ही नहीं संसार के बहुत से देशों में भारतीय प्रवासी रहते हैं और वे चाहते भी हैं कि भारतीय धर्म प्रचारक साधु महात्मा हमारे मध्य में आवें और हमें धार्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा दें। परन्तु मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि उनमें से अधिकांश लोग पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त के हैं इसलिये तुलसीकृत श्री रामचरित मानस से उनका विशेष प्रेम है। अतः अब आवश्यकता यह है कि उनके सामने श्रीराम चरित मानस का यथा सम्भव सही अर्थ रखा जाय। साथ ही यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि श्रीराम चरित मानस कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है और न तो किसी जाति विशेष के लिये ही है। यह श्रीरामचरित्र मानस तो संसार भर के मानव मात्र के लिये है इसलिये तुलसी के इस सन्देश को जिसमें मानवता की पूर्ण शिक्षा है विश्व के कोने-कोने में पहुँचा देने का मेरा संकल्प है। यद्यपि श्री रामचरित मानस के कुछ प्रचारक मुझसे पूर्व भी विदेशों में जा चुके हैं परन्तु उनका प्रचार क्षेत्र केवल भारतीय प्रवासियों तक ही सीमित रहा है किन्तु मेरा सम्बन्ध भारतीय प्रवासियों के अतिरिक्त संसार के अन्य लोगों से जिनमें अधिकांश अमेरिकन हैं, अधिक है और वे अमेरिकन या संसार के अन्य लोगों को श्री राम चरित्र के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं है। अतः मैं भगवान श्रीराम का चरित्र जो मानवीय जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी है विश्व के अधिकांश मनुष्यों तक पहुँचाने के उद्देश्य से श्रीराम चरित मानस की मौलिकतापूर्ण एक सुन्दर व्याख्या करने का प्रयास कर रहा हूँ। यद्यपि यह कार्य है तो कठिन परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि श्री हनुमान जी चाहते हैं कि श्रीराम चरित मानस का विश्व में प्रचार हो इसलिये उनकी कृपा से कोई कठिन भी नहीं हैं। हाँ, मैं जो व्याख्या कर रहा हूँ उसका अनुवाद प्रथम अंग्रेजी में होगा और भविष्य में संसार की प्रसिद्ध भाषाओं में भी कराने का प्रयास करूँगा। साथ ही उसका प्रकाशन डेढ़ दो सौ पृष्ठों के रूप में अनेक भागों में होता रहेगा ताकि लोगों को पढ़ने में सुविधा हो।

इस राम चरित्र का जो कुछ भी मुझे ज्ञान है इसको लिपिबद्ध करने की प्रेरणा समय-समय पर बहुत से मेरे प्रेमीजन देते रहे हैं उनमें विशेष उल्लेखनीय नाम श्रीमान् कृष्ण कुमार जी गोविल का है जो एक गृहस्थ आश्रम में रह कर भी सन्त हैं। इस कार्य में महत्वपूर्ण योग-

दान ग्राम सराय भागमानी जिला सुल्तानपुर के निवासी पं० श्री दुर्गा प्रसाद जी मिश्र का है जो मेरे साथ रह कर बहुत ही श्रद्धाभक्ति से लेखन कार्य कर रहे हैं। साथ ही इसका अंग्रेजी अनुवाद मेरे अन्य शिष्यों के सहयोग से होनोलुलू हवाई द्वीप में रामदास कर रहा है जो मेरा प्रधान शिष्य है।

—मानस महारथी त्यागी

रचना परिचय

यह रामचरित मानस नामक ग्रन्थ सात भागों में विभक्त है जिसे हम सात काण्ड भी कह सकते हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। प्रत्येक काण्ड के आरम्भ में गोस्वामी तुलसीदास ने संस्कृत में मंगलाचरण किया है। मंगलाचरण के बाद गणेश, सूर्य, भगवान् विष्णु, भगवान शंकर और गुरु की वन्दना की गई है। गुरु वन्दना के बाद साधु समाज की वन्दना की गई है जिसे गोस्वामी जी ने चलता फिरता प्रयाग माना है। तत्पश्चात् सुसंग और कुसंग का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने यह दिखाया है कि मनुष्य सुसंग से कितना महान् बन सकता है और कुसंग से कितना गिर सकता है। साथ ही यहाँ गोस्वामी जी खलों की वन्दना करना भी नहीं भूलते हैं क्योंकि दुष्ट मनुष्यों को पराजित करने के लिये यह सबसे बड़ा अस्त्र है। साधु-असाधु की वन्दना के प्रसंग में ही गोस्वामी जी ने इस संसार का स्वरूप चित्रण करते हुए यह कहा है कि यह संसार गुण-दोषमय है जैसे साधु-असाधु, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, धनी-निर्धन, ऊँच-नीच, गुण-दोष, जन्म-मृत्यु, जड़-चैतन्य परन्तु इस गुण-दोषमय जगत में सन्त हंस के समान है। जैसे हंस में क्षीर-नीर को अलग करने की क्षमता है उसी प्रकार संत इस गुण-दोषमय जगत में दोष को छोड़कर गुण को ग्रहण कर लेते हैं।

दो०—जड़ चेतन गुन दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥१।६

उसके बाद गोस्वामी तुलसीदास जी ने सन्त कवि होने के कारण अपनी दीनता प्रगट करते हुए कहा है कि मुझमें कुछ भी कविता करने की शक्ति नहीं है, और न तो मैं कवि ही हूँ, न मुझमें वाक्‌पटुता ही है। परन्तु मुनियों ने पहले ही इस रामचरित्र को गाया है इसलिये उस मार्ग पर चलना मेरे लिए उसी प्रकार सरल है जैसे किसी बहुत बड़ी नदी पर जब कोई राजा सेतु बना देता है तब बहुत ही छोटी चींटी भी उस सेतु पर चढ़ कर अपार नदी को पार कर लेती है। तत्पश्चात् अपने से पूर्व के व्यास आदि कवियों को एवम् अपने समय के कवियों को और भविष्य में होने वाले कवियों को ग्रन्थकार ने प्रणाम किया है। विशेष रूप से आदि कवि वाल्मीकि के चरण कमलों की वन्दना करते हुए उनकी रचना महाकाव्य रामायण की विशेष प्रशंसा की है। वाल्मीकि कृत रामायण की प्रशंसा करने के बाद ही ग्रन्थकार ने चारों वेदों की एवम् चतुर्मुख ब्रह्मा की वन्दना की है। ब्रह्मा की वन्दना के साथ ही उनका विचित्र कार्य गुण-दोषमय जगत की चर्चा करते हुए इस जगत से सम्बन्धित ग्रह-

नक्षत्रों की भी वे वन्दना करते हैं। उसके बाद वे पुनः सरस्वती और गंगा की वन्दना करते हुए दोनों की विशेषता बताते हैं। गंगा में स्नान और पान करने से पाप नष्ट होता है और सरस्वती के स्मरण से अज्ञान नष्ट होता है। अब वे गुरु पिता और माता के रूप में आशुतोष शिव और भवानी पार्वती की वन्दना करते हैं। भगवान शिव और भगवती पार्वती की विशेष कृपा के फलस्वरूप ही ग्रन्थकार अपने को श्रीराम चरित्र की रचना में समर्थ बताते हुए अब अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरी की एवम् कलियुग के समस्त पापों को नाश करने वाली सरयू की वन्दना करते हैं। अयोध्या के नर-नारियों पर प्रभु श्रीराम की अधिक ममता है इसलिये उनकी वन्दना करते हुए वे पूर्व दिशा के समान माता कौशल्या की वन्दना करते हैं। जैसे पूर्व दिशा हमें प्रकाश देती है उसी प्रकार माता कौशल्या ने मानव समाज को ऐसा प्रकाश दिया है जो कभी अस्त नहीं हो सकता है। तत्पश्चात् वे दशरथ की अन्य रानियों के सहित महाराज दशरथ की वन्दना करते हैं और पुनः विशेष रूप से महाराज दशरथ की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं अवध के राजा दशरथ की वन्दना करता हूँ जिनका सत्य प्रेम श्रीराम के चरणों में था क्योंकि श्रीराम के बिछुड़ते ही दशरथ ने अपने प्रिय शरीर को तृण के समान त्याग दिया।

सो०—वन्दउँ अवध भुवाल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीन दयाल, प्रिय तन तृन इव परिहरेऊ ॥१।१६

उसके बाद ग्रन्थकार परिवार के सहित विदेहराज जनक की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं उन जनक को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने योग और भोग के सम्पुट में भक्ति को छिपा रखा था परन्तु श्रीराम को देखते ही उस भक्ति को प्रगट कर दिया और अब ग्रन्थकार श्रीराम के भाइयों में सर्वप्रथम भरत की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं प्रथम श्री भरत के चरणों को प्रणाम करता हूँ जिनके नियम और व्रत का वर्णन नहीं किया जा सकता है और जिनका मन लोभी भँवरा की तरह श्रीराम के चरण कमलों से कभी दूर नहीं जाता है।

भरत को प्रणाम करके अब ग्रन्थकार लक्ष्मण की वन्दना करते हैं कि मैं श्री लक्ष्मण के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ जो स्वभाव से शीतल, सुन्दर, भक्तों को सुख देने वाले हैं तथा श्रीराम के यश रूपी पताका के लिये जिनका यश दण्ड के समान है। जो हजार फन वाले शेष हैं, जो जगत के कारण हैं और जो पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतरित हुए हैं ऐसे सुमित्रा के पुत्र गुण और कृपा के समुद्र सदा मुझ पर प्रसन्न रहें। अब लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न के चरणों में प्रणाम करते हुए कहते हैं कि मैं शत्रुघ्न के चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ जो सूर, सुशील और भरत के अनुगामी हैं।

इस प्रकार तीनों भाइयों की वन्दना एवम् संक्षिप्त कार्य परिचय के बाद गोस्वामी जी श्री हनुमान जी की वन्दना करते हैं कि मैं महावीर श्री हनुमान जी की वन्दना करता हूँ जिनके यश का बखान श्रीराम ने स्वयं किया है। जो खल रूपी जंगल के लिये प्रबल अग्नि के समान हैं। जो ज्ञान के बादल हैं अर्थात् जो बादल की तरह ज्ञान की वर्षा करते हैं, जिनका हृदय श्रीराम जी का अपना घर है। यही कारण है कि श्री हनुमान जी के हृदय में भगवान

श्रीराम धनुष बाण लेकर सदा निवास करते हैं। ऐसे पवन कुमार श्री हनुमान जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

सो०—प्रनवउँ पवन कुमार, खलवन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर ॥१।१७

अब वानरों के राजा सुग्रीव, निशाचरों के राजा विभीषण, युवराज अंगद आदि सभी वानर भालुओं की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं उन वानर भालुओं के चरणों की वन्दना करता हूँ जिन्होंने वानर भालुओं के अधम शरीर में होते हुए भी श्रीराम को प्राप्त कर लिया। इसके अतिरिक्त उन समस्त पशु-पक्षियों एवम् जीव-जन्तुओं को भी प्रणाम करते हैं कि जिन्होंने परमात्मा श्रीराम का दर्शन किया और अब वे भगवान की आह्लादिनी शक्ति राजर्षि जनक की बेटी श्री सीता जी की वन्दना करते हुए कहते हैं कि जो जनक की बेटी है, जगत की जननी है और जो करुणा निधान श्रीराम को अतिशय प्यारी है, जो जीवों को निर्मल बुद्धि दिया करती है, उन सीता जी के युगल चरण कमलों में मैं प्रणाम करता हूँ क्योंकि उन्हीं की कृपा से मैं निर्मल बुद्धि प्राप्त कर सकता हूँ। निर्मल बुद्धि प्राप्त होने पर ही जीव ईश्वर के सम्मुख जा सकता है। इसी नियम के अनुसार अब ग्रन्थकार भगवान श्रीराम के सम्मुख जाने का साहस करते हुए श्रीराम के चरण कमलों की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं मन वचन कर्म से रघुनायक श्रीराम के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो चरण सब कुछ करने में योग्य हैं और जो भक्तों की विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से सुख देते हैं, जो सदा धनुष बाण धारण किये रहते हैं ऐसे कमल के समान नेत्र वाले श्रीराम को मैं पुनः प्रणाम करता हूँ।

अब पुनः श्री सीता राम के अभिन्न रूप को प्रणाम करते हुए उनकी अभिन्नता का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि शब्द और अर्थ, जल और तरंग की भाँति जो अभिन्न हैं ऐसे श्री सीताराम के चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ जिन्हें दुःखी बहुत प्रिय हैं।

दो०—गिरा अरथ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दउं सीतारामपद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥१।१८

और अब चौ०—बन्दउँ नाम राम रघुबर को, हेतु कृसानु भानु हिम करको।

इस अर्धाली से आरम्भ करके नौ दोहों में ग्रन्थकार ने राम नाम की महिमा एवम् वन्दना की है। नौ दोहों में राम नाम की वन्दना करने का अभिप्राय यह है कि नौ का अंक ब्रह्म का प्रतीक माना जाता है। जैसे ब्रह्म अव्यय है (जिसमें व्यय न होता हो) उसी प्रकार नौ का अंक भी अव्यय है। शेष एक से आठ तक परिवर्तनशील हैं परन्तु नौ के अंक में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है, वह सदा नौ का नौ ही बना रहता है। जैसे नौ को दुगुना करिये तो अठारह होगा। अठारह में एक और आठ है, एक और आठ को जोड़ने से नौ बन जायगा। इसी प्रकार नौ को तिगुना करिये तो सत्ताइस बनेगा। सत्ताइस में दो और सात हैं दोनों के जोड़ने से नौ बन जायगा। अतः नब्बे तक चलते जाइये नौ का अङ्क हमेशा नौ ही बना रहेगा। कभी भी उसमें घटने बढ़ने का परिवर्तन नहीं होगा। ठीक उसी प्रकार राम नाम को ग्रन्थकार ने ब्रह्म के समान अव्यय एवम् सनातन माना है।

भक्ति के चार अंग होते हैं—नाम, रूप, लीला और धाम। भक्ति दर्शन के अनुसार

ये चारों ही नित्य और सनातन हैं। भक्त इन्हीं चारों में से किसी एक के द्वारा या चारों के द्वारा भगवान की उपासना करता है परन्तु इन चारों में से नाम जाप या नाम संकीर्तन के द्वारा भगवान की उपासना एवम् भगवात् प्राप्ति इस युग में बहुत ही सरल है क्योंकि रूप का ध्यान तो कोई सिद्ध भक्त योगी ही कर सकता है। साधारण साधक के लिए भगवत् स्वरूप का ध्यान करना अत्यन्त कठिन है।

अब रही लीला की बात, परन्तु लीला का ज्ञान भी तो सर्व साधारण के लिए कठिन ही है। जिस पर भगवान की विशेष कृपा होती है वही लीला का रहस्य कुछ अंशों में जान पाता है। इसी प्रकार भगवद्धाम अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन इत्यादि में वास करना भी एक जटिल समस्या है क्योंकि धाम या तीर्थ धर्म के गढ़ माने गए हैं। जिस प्रकार शत्रु के भय से लोग दुर्ग में छिप जाते हैं उसी प्रकार प्रबल शत्रु कलियुग के भय से धर्म इस समय तीर्थों में छिपा हुआ है और जिस प्रकार से शत्रु सैनिक मोर्चे पर ही प्रहार करते हैं उसी प्रकार कलियुग पूरी शक्ति से इस वर्तमान समय में तीर्थों पर प्रहार कर रहा है। इसलिए किसी भी तीर्थ या भगवान की लीला स्थलियों में वास करने के लिये मन को संयमित रखना बहुत ही आवश्यक है अन्यथा पुण्य के बजाय पाप कर्म बन जाने की बहुत सम्भावना रहती हैं, परन्तु उपर्युक्त रूप लीला और धाम से सम्बन्धित कठिनाइयों या विघ्न बाधाओं का भय नाम जप या नाम संकीर्तन में नहीं है। नाम तो प्रगट ब्रह्म है।

चौ०—भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

जिस प्रकार तिल में तेल, दूध में मक्खन और काष्ठ में अग्नि छिपी हुई है उसी प्रकार से निश्चित रूप से नाम में नामी छिपा हुआ है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम का अनुगमन करता है, यदि आप किसी को उसके नाम से पुकारेंगे तो वह व्यक्ति अपना नाम सुन कर आपके सामने प्रगट हो जायगा वैसे ही यदि आप भगवन्नाम का स्मरण करते रहेंगे तो एक न एक दिन भगवान् आपके सामने अवश्य प्रगट हो जायेंगे इस प्रकार नाम और नामी अभेद है।

निरन्तर रामनाम जप या राम नाम संकीर्तन के द्वारा जीव ब्रह्म के तद्रूप अर्थात् ब्रह्ममय हो सकता है। नौ दोहों में राम नाम की वन्दना करने का यही अभिप्राय गोस्वामी तुलसीदास जी का है।

नाम वन्दना के बाद गोस्वामी जी ने राम कथा की परम्पराओं का वर्णन करते हुए यह कहा है कि इस चरित्र की रचना सर्व प्रथम भगवान शिव ने की और अवसर पाकर पार्वती को सुनाया। परन्तु पार्वती को सुनाने से पूर्व ही भगवान शिव ने समाधि में इस रामचरित का उपदेश लोमश ऋषि को किया था और लोमश ऋषि के द्वारा यह रामचरित कागभुसुण्डि को प्राप्त हुआ और कागभुसुण्डि से यह रामचरित्र महर्षि याज्ञवल्क्य को, महर्षि याज्ञवल्क्य से भरद्वाज को। महर्षि भरद्वाज की परम्परा से ही यह रामचरित्र ग्रन्थकार के गुरु को प्राप्त हुआ क्योंकि उपर्युक्त परम्परा से चली आ रही राम कथा गुरु मुख से सुनने की बात ग्रन्थकार स्वयं यहाँ लिख रहे हैं।

श्रीराम धनुष बाण लेकर सदा निवास करते हैं। ऐसे पवन कुमार श्री हनुमान जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

सो॰—प्रनवउँ पवन कुमार, खलवन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर ॥१।१७

अब वानरों के राजा सुग्रीव, निशाचरों के राजा विभीषण, युवराज अंगद आदि सभी वानर भालुओं की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं उन वानर भालुओं के चरणों की वन्दना करता हूँ जिन्होंने वानर भालुओं के अधम शरीर में होते हुए भी श्रीराम को प्राप्त कर लिया। इसके अतिरिक्त उन समस्त पशु-पक्षियों एवम् जीव-जन्तुओं को भी प्रणाम करते हैं कि जिन्होंने परमात्मा श्रीराम का दर्शन किया और अब वे भगवान की आह्लादिनी शक्ति राजर्षि जनक की बेटी श्री सीता जी की वन्दना करते हुए कहते हैं कि जो जनक की बेटी है, जगत की जननी है और जो करुणा निधान श्रीराम को अतिशय प्यारी है, जो जीवों को निर्मल बुद्धि दिया करती है, उन सीता जी के युगल चरण कमलों में मैं प्रणाम करता हूँ क्योंकि उन्हीं की कृपा से मैं निर्मल बुद्धि प्राप्त कर सकता हूँ। निर्मल बुद्धि प्राप्त होने पर ही जीव ईश्वर के सम्मुख जा सकता है। इसी नियम के अनुसार अब ग्रन्थकार भगवान श्रीराम के सम्मुख जाने का साहस करते हुए श्रीराम के चरण कमलों की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं मन वचन कर्म से रघुनायक श्रीराम के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो चरण सब कुछ करने में योग्य हैं और जो भक्तों की विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से सुख देते हैं, जो सदा धनुष बाण धारण किये रहते हैं ऐसे कमल के समान नेत्र वाले श्रीराम को मैं पुनः प्रणाम करता हूँ।

अब पुनः श्री सीता राम के अभिन्न रूप को प्रणाम करते हुए उनकी अभिन्नता का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि शब्द और अर्थ, जल और तरंग की भाँति जो अभिन्न हैं ऐसे श्री सीताराम के चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ जिन्हें दुःखी बहुत प्रिय हैं।

दो॰—गिरा अरथ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दउं सीतारामपद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥१।१८

और अब चौ॰—बन्दउँ नाम राम रघुबर को, हेतु कृसानु भानु हिम करको।

इस अर्धाली से आरम्भ करके नौ दोहों में ग्रन्थकार ने राम नाम की महिमा एवम् वन्दना की है। नौ दोहों में राम नाम की वन्दना करने का अभिप्राय यह है कि नौ का अंक ब्रह्म का प्रतीक माना जाता है। जैसे ब्रह्म अव्यय है (जिसमें व्यय न होता हो) उसी प्रकार नौ का अंक भी अव्यय है। शेष एक से आठ तक परिवर्तनशील हैं परन्तु नौ के अंक में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है, वह सदा नौ का नौ ही बना रहता है। जैसे नौ को दुगुना करिये तो अठारह होगा। अठारह में एक और आठ है, एक और आठ को जोड़ने से नौ बन जायगा। इसी प्रकार नौ को तिगुना करिये तो सत्ताइस बनेगा। सत्ताइस में दो और सात हैं दोनों के जोड़ने से नौ बन जायगा। अतः नब्बे तक चलते जाइये नौ का अङ्क हमेशा नौ ही बना रहेगा। कभी भी उसमें घटने बढ़ने का परिवर्तन नहीं होगा। ठीक उसी प्रकार राम नाम को ग्रन्थकार ने ब्रह्म के समान अव्यय एवम् सनातन माना है।

भक्ति के चार अंग होते हैं—नाम, रूप, लीला और धाम। भक्ति दर्शन के अनुसार

ये चारों ही नित्य और सनातन हैं। भक्त इन्हीं चारों में से किसी एक के द्वारा या चारों के द्वारा भगवान की उपासना करता है परन्तु इन चारों में से नाम जाप या नाम संकीर्तन के द्वारा भगवान की उपासना एवम् भगवात् प्राप्ति इस युग में बहुत ही सरल है क्योंकि रूप का ध्यान तो कोई सिद्ध भक्त योगी ही कर सकता है। साधारण साधक के लिए भगवत् स्वरूप का ध्यान करना अत्यन्त कठिन है।

अब रही लीला की बात, परन्तु लीला का ज्ञान भी तो सर्व साधारण के लिए कठिन ही है। जिस पर भगवान की विशेष कृपा होती है वही लीला का रहस्य कुछ अंशों में जान पाता है। इसी प्रकार भगवद्धाम अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन इत्यादि में वास करना भी एक जटिल समस्या है क्योंकि धाम या तीर्थ धर्म के गढ़ माने गए हैं। जिस प्रकार शत्रु के भय से लोग दुर्ग में छिप जाते हैं उसी प्रकार प्रबल शत्रु कलियुग के भय से धर्म इस समय तीर्थों में छिपा हुआ है और जिस प्रकार से शत्रु सैनिक मोर्चे पर ही प्रहार करते हैं उसी प्रकार कलियुग पूरी शक्ति से इस वर्तमान समय में तीर्थों पर प्रहार कर रहा है। इसलिए किसी भी तीर्थ या भगवान की लीला स्थलियों में वास करने के लिये मन को संयमित रखना बहुत ही आवश्यक है अन्यथा पुण्य के बजाय पाप कर्म बन जाने की बहुत सम्भावना रहती है, परन्तु उपर्युक्त रूप लीला और धाम से सम्बन्धित कठिनाइयों या विघ्न बाधाओं का भय नाम जप या नाम संकीर्तन में नहीं है। नाम तो प्रगट ब्रह्म है।

चौ०—भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

जिस प्रकार तिल में तेल, दूध में मक्खन और काष्ठ में अग्नि छिपी हुई है उसी प्रकार से निश्चित रूप से नाम में नामी छिपा हुआ है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम का अनुगमन करता है, यदि आप किसी को उसके नाम से पुकारेंगे तो वह व्यक्ति अपना नाम सुन कर आपके सामने प्रगट हो जायगा वैसे ही यदि आप भगवन्नाम का स्मरण करते रहेंगे तो एक न एक दिन भगवान् आपके सामने अवश्य प्रगट हो जायेंगे इस प्रकार नाम और नामी अभेद है।

निरन्तर रामनाम जप या राम नाम संकीर्तन के द्वारा जीव ब्रह्म के तद्रूप अर्थात् ब्रह्ममय हो सकता है। नौ दोहों में राम नाम की वन्दना करने का यही अभिप्राय गोस्वामी तुलसीदास जी का है।

नाम वन्दना के बाद गोस्वामी जी ने राम कथा की परम्पराओं का वर्णन करते हुए यह कहा है कि इस चरित्र की रचना सर्व प्रथम भगवान शिव ने की और अवसर पाकर पार्वती को सुनाया। परन्तु पार्वती को सुनाने से पूर्व ही भगवान शिव ने समाधि में इस रामचरित का उपदेश लोमश ऋषि को किया था और लोमश ऋषि के द्वारा यह रामचरित कागभुसुण्डि को प्राप्त हुआ और कागभुसुण्डि से यह रामचरित्र महर्षि याज्ञवल्क्य को, महर्षि याज्ञवल्क्य से भरद्वाज को। महर्षि भरद्वाज की परम्परा से ही यह रामचरित्र ग्रन्थकार के गुरु को प्राप्त हुआ क्योंकि उपर्युक्त परम्परा से चली आ रही राम कथा गुरु मुख से सुनने की बात ग्रन्थकार स्वयं यहाँ लिख रहे हैं।

दो०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ।।१।३०
चौ०—तदपि कही गुरु बारहिं बारा, समुझि परी कछु मति अनुसारा।
भाषा बद्ध करब मैं सोई, मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।।

तत्पश्चात् राम कथा की महिमा का वर्णन करते हुए श्रीरामचरितमानस क्या है इसकी रचना क्यों हुई है यह बताने के लिये इस दोहे से आरम्भ करते हैं।

दो०—जस मानस जेहिविधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहहुँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा बृषकेतु ।।१।३५

यह रामचरित मानस जैसा है, जिस प्रकार बना है और जिस हेतु जगत में इसका प्रचार हुआ है, अब वही सब कथा मैं श्री उमा महेश्वर का स्मरण करके कहता हूँ। इस दोहे में श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि यह रामचरित मानस क्या है, इसकी रचना कैसे हुई और किस हेतु से इसका प्रचार हुआ है। तो यहाँ सर्व प्रथम यह रामचरित मानस क्या है इसी पर विचार कर रहा हूँ। गोस्वामी जी ने स्वयं सर्व प्रथम इस रामचरित मानस को मानसरोवर से उपमित किया है अर्थात् मानसरोवर कहा है परन्तु ऐसा लगता है कि इस रामचरितमानस को मानसरोवर कह कर गोस्वामी जी सन्तुष्ट नहीं हुए क्योंकि मानसरोवर तो हिमालय की दुर्गम घाटियों में स्थित है। यदि कोई मानसरोवर में जाकर स्नान आदि करना चाहे तो उसे हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करना होगा और हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करना जन साधारण के लिये सम्भव नहीं है। हजारों में कोई एकाध ही हिमालय की उन दुर्गम घाटियों को पार करके मानसरोवर तक पहुँचने में सफल होता है। साथ ही यह भी सुना जाता है कि मानसरोवर में हंसों का निवास है। वहाँ बगुले और कौवों की गति नहीं है। यही कारण है कि गोस्वामी जी इस रामचरित-मानस को मानसरोवर कह कर सन्तुष्ट नहीं हुए और तब गोस्वामी जी ने सोचा कि यदि मानसरोवर का वह पवित्रतम जल हिमालय की दुर्गम घाटियों को तोड़ता-फोड़ता समतल भूमि में आ जाय तो सर्व साधारण के लिये भी सुलभ हो सकता है। तब उन्होंने इस राम-चरित मानस को सरयू से उपमित किया और कहा कि मेरी रचना सरयू है क्योंकि सरयू का उद्गम स्थान मानसरोवर ही माना जाता है और अब जब वह मानसरोवर का पवित्रतम जल सरयू के रूप में समतल भूमि पर प्रगट हो गया तब बगुले और कौवे के समान वह मानसरोवर का जल सर्व साधारण को भी सुलभ हो गया।

यहाँ संस्कृत भाषा में श्री रामचरित्र का होना ही मानसरोवर की तरह से दुर्गम समझना चाहिए। वाल्मीकि आदि रामायण जो संस्कृत भाषा में है आज का मनुष्य जो संस्कृत नहीं जानता है उसके लिये उतना ही दुर्गम है जितना कि मानसरोवर परन्तु वही रामचरित हमारी बोलचाल की भाषा में लिख कर गोस्वामी जी ने सरयू की तरह से सर्व साधारण के लिये, जो संस्कृत नहीं जानता उसके लिये, भी सुलभ कर दिया है।

यही है मानसरोवर का जल सरयू के रूप में समतल भूमि में प्रगट होने का

अभिप्राय। परन्तु गोस्वामी जी श्रीरामचरितमानस को सरयू कह कर भी सन्तुष्ट नहीं हुए और अन्त में गंगा से उपमित किया अर्थात् श्रीराम के विमल यश रूपी सरयू को श्रीराम भक्ति स्वरूपा गंगा में मिला दिया।

चौ०—राम भगति सुरसरितहिं जाई, मिली सुकीरति सरजु सुहाई।

और अब श्रीराम चरित को गंगा कहने पर गोस्वामी जी को सन्तोष हुआ, क्योंकि जिस प्रकार गंगाजी सब का हित करती हैं उसी प्रकार तुलसीदास जी चाहते हैं कि मेरी रचना गंगा के समान सब का हित करने वाली हो।

चौ०—कीरति भनति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी रचना को गंगा कह कर ही सन्तुष्ट क्यों हुए?

उत्तर—गंगा को श्रीरामचरित मानस में सर्वत्र भक्ति से उपमित किया है। जैसे जीवों के कल्याण के लिए अनेक साधन बताए गए हैं परन्तु सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय अर्थात् सबके लिये सुलभ एवं सरल मार्ग तो भक्ति ही है। ठीक उसी प्रकार सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय तुलसीदास द्वारा रचित श्रीरामचरित मानस ही हो सकता है। यद्यपि समय-समय पर अनेकों महापुरुषों एवम् अवतारों ने मानव समाज को मानवता की शिक्षा देने के लिये अनेकों प्रकार के चरित्र किये हैं और बाद में कवियों ने उन चरित्रों को बहुत सी भाषाओं में लिख कर मानव-समाज का बहुत बड़ा हित करने का प्रयास किया है परन्तु किसी न किसी कारण से उनकी रचनाएँ सर्वजन सुखाय और सर्वजन हिताय की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं। जैसे अधिकांश भारतीय दर्शन एवम् भारतीय साहित्य संस्कृत भाषा में होने के कारण सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय नहीं हो सकते क्योंकि आज का मानव समाज संस्कृत भाषा से कोसों दूर हो गया है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत सी रचनाएँ किसी न किसी प्रान्तीय भाषा या किसी वर्ग विशेष की भाषा में होने के कारण सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय नहीं हो सकती हैं। इसी प्रकार भगवान श्रीराम के चरित्र के अतिरिक्त अन्य महा-पुरुषों या अवतारों के चरित्र से पूर्ण मानवता की शिक्षा हमें नहीं मिलती है। जैसे पिता-पुत्र का कर्त्तव्य, माता-पुत्र का कर्त्तव्य, गुरु-शिष्य का कर्त्तव्य, पति-पत्नी का कर्त्तव्य, भाई-भाई का कर्त्तव्य, स्वामी-सेवक का कर्त्तव्य, राजा-प्रजा का कर्त्तव्य। इस प्रकार मानवता की पूर्ण शिक्षा तो भगवान राम के चरित्र से ही मिलती है अन्य किसी चरित्र से नहीं। इसलिये भक्ति के प्रतीक गंगा की भाँति गोस्वामी श्री तुलसीदास की रचना श्रीरामचरितमानस ही सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय हो सकता है।

श्रीरामचरित मानस क्या है यह बताने के बाद अब ग्रन्थकार प्रयाग में महर्षि भरद्वाज और महर्षि याज्ञवल्क्य का मिलन कैसे हुआ इसे लिखते हुए महर्षि भरद्वाज ने राम कथा सुनने की इच्छा से जो प्रश्न किये हैं उन प्रश्नों को लिखा है। भरद्वाज के प्रश्नों को सुनकर महर्षि याज्ञवल्क्य भरद्वाज की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आपको तो श्रीराम की प्रभुता अच्छी तरह से मालूम है परन्तु रामकथा सुनने की ही इच्छा से आपने प्रश्न किया है। ऐसे ही प्रश्न पार्वती ने भगवान शंकर से किया था। तब भगवान शंकर ने जो

उत्तर दिया था और जैसे पार्वती व भगवान शंकर का संवाद हुआ था अपनी बुद्धि के अनुसार वह सब सुनाता हूँ हे मुनि ! जिसे सुनकर विषाद मिट जाता है ।

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अव, उमा संभु संवाद ।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटइ विषाद ।।१।४७

यह है इस रामचरित मानस के आरम्भ से इस दोहे तक का संक्षिप्त परिचय । इससे आगे की व्याख्या विशेष रूप से की गई है ।

—मानस महारथी त्यागी

चरित्र परिचय

यह संसार एक रंगमंच है और हम समस्त नर-नारी नट और नटी के समान हैं। हमारा जीवन अर्थात् मानवता ही वह एक नाटक है जिसे खेलने के लिए हम इस संसार रूपी रंग मंच पर आये हुए हैं। माया ही इस संसार रूपी रंग मंच की प्रबन्धक है तथा काल ही इसका सहायक निदेशक है और मृत्यु ही वह पर्दा है जिसकी ओट में हम अपने जीवन का नाटक खेलने के उपरान्त छिप जाते हैं। परन्तु जब-जब हम अपनी मानवता को भूल जाते हैं तब-तब वह परमात्मा जिनका एक नाम नटराज भी है और जो इस रंग मंच के महान निदेशक भी हैं, हमें मानवता की शिक्षा देने के लिये समयानुसार हमारे मध्य में भिन्न-भिन्न रूपों में आते हैं। उन्हीं महापुरुषों एवम् अवतारों में से एक भगवान् राम भी थे जो आज से लाखों वर्ष पूर्व भारत देश के अयोध्या नाम के नगर में परम् पवित्र सूर्यवंश के महा यशस्वी चक्रवर्ती राजा दशरथ के पुत्र बन कर आये थे।

महाराज दशरथ के तीन रानियाँ थीं। बड़ी रानी का नाम कौशल्या, दूसरी रानी का नाम कैकेयी और तीसरी रानी का नाम सुमित्रा था। बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से ही भगवान राम ने अवतार लिया था, दूसरी रानी कैकेयी के गर्भ से भरत ने और तीसरी रानी सुमित्रा के गर्भ से लच्मण और शत्रुघ्न ने जन्म लिया था। भरत, लक्षमण और शत्रुघ्न भी परम ब्रह्म श्रीराम के अंश से ही अवतरित हुए थे। महाराज दशरथ पूर्व जन्म में इसी सूर्य वंश के प्रथम राजा मनु के नाम से प्रसिद्ध थे और महारानी कौशल्या भी पूर्व जन्म में इसी सूर्य वंश के प्रथम राजा मनु की ही पत्नी सतरूपा के नाम से प्रसिद्ध थीं। महाराजा मनु और महारानी सतरूपा ने अनेकों वर्षों तक अयोध्या का राज्य किया और उसके बाद अपने पुत्र को राज्य सौंप कर अत्यन्त पवित्र नैमिषारण्य तीर्थ में जाकर भगवान को प्रसन्न करने के लिये हजारों वर्षों तक कठोर तपस्या किया। महाराजा मनु और महारानी सतरूपा को कठोर तपस्या करते हुए देखकर ब्रह्मादिक देवताओं ने अनेकों प्रकार से उनकी परीक्षाएँ लीं और जब वे परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए तब उस सनातन ब्रह्म ने आकाशवाणी किया और कहा कि वर माँगो। तब महाराज मनु ने कहा कि हे प्रभो! जिस रूप से आप भगवान् शिव के हृदय में निवास करते हैं और जिस रूप को पाने के लिये बड़े-बड़े मुनि लोग नाना प्रकार से प्रयास करते रहते हैं पहले हम दोनों आपके उस रूप को भर नेत्र देख लेना चाहते हैं तब मैं वरदान मागूंगा। महाराजा मनु और सतरूपा पर भगवान प्रसन्न तो थे ही इसलिए श्रीराम

के रूप में अपनी पराशक्ति सीता के सहित भगवान प्रगट हो गये। अपने सन्मुख उस सनातन ब्रह्म को विश्व विमोहन नयनाभिराम श्रीराम के रूप में अपनी पराशक्ति भगवती सीता के सहित प्रगट देखकर महाराजा मनु और महारानी सतरूपा ने पहले भर नेत्र अपने इष्टदेव श्रीराम का दर्शन किया और उसके बाद बड़े भक्ति भाव के साथ यह वरदान माँगा कि हे श्री हरि ! मेरी यह प्रबल इच्छा है कि आप मेरे पुत्र बन कर मेरे घर में जन्म लें और मानवीय मर्यादाओं की स्थापना करें। तब भगवान श्रीराम ने तथास्तु कह कर वरदान दिया और कहा कि अभी तो आप दोनों शरीर त्याग कर स्वर्ग में जायँ और वहाँ निवास करें। त्रेता युग के अन्त में आप दोनों दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध होंगे और तब मैं अपने अंशों के सहित सुन्दर नर शरीर धारण करके पुत्र के रूप में आपके घर में प्रगट हो जाऊँगा और यह मेरी आदि शक्ति सीता भी मिथिलानरेश राजा जनक की बेटी बनकर प्रगट होंगी। और कुछ समय पश्चात् मुझसे इनका विवाह होगा तब यह भी आपकी पुत्रबधू बनकर आपके घर में आ जायेंगी। इस प्रकार आपकी सभी अभिलाषाओं को मैं पूर्ण करूँगा।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा, सत्य सत्य पन सत्य हमारा।
पुनि पुनि अस कहि कृपा निधाना, अन्तर्ध्यान भए भगवाना॥

अब भगवान श्रीराम के निर्देशानुसार महाराजा मनु और सतरूपा ने कुछ समय के बाद भगवान श्रीराम के श्रीचरणों का ध्यान करते हुए दोनों पति-पत्नी शरीर त्यागकर स्वर्ग में पहुँच गये और बहुत समय तक स्वर्ग में निवास करने के बाद वही महाराजा मनु और महारानी सतरूपा पुनः उसी सूर्यवंश में अयोध्या के राजा महाराज दशरथ और महारानी कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध हुए। तब श्री हरि अपने वरदान के अनुसार अपने अंशों के सहित महाराज दशरथ की रानियों के गर्भ से प्रगट हुए। बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से जो पूर्वजन्म में सतरूपा थीं स्वयं श्रीहरि प्रगट हुए। दूसरी रानी कैकेयी के गर्भ से भरत ने और तीसरी रानी सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने जन्म लिया। इस प्रकार महाराज दशरथ की तीन रानियों से चार पुत्र हुए। बड़े श्री रामचन्द्र, दूसरे भरत, तीसरे लक्ष्मण और चौथे शत्रुघ्न।

वैदिक परम्परा के अनुसार जन्म लेने के पश्चात् के सभी संस्कार समय-समय पर विधिवत् कराये गये। वैदिक संस्कृति में गर्भाधान संस्कार से लेकर मृत्यु संस्कार तक सोलह संस्कार माने गए हैं। इनमें से गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्त ये तीन संस्कार जन्म से पहले के माने गए हैं और बालक के जन्म लेने पर जात कर्म संस्कार से लेकर शेष संस्कार समय-समय पर कराए जाते थे। प्राचीन भारत में वैदिक धर्म को मानने वाले विधिवत् इन सोलहों संस्कारों को कराते थे। अब तो इनमें से कुछ ही संस्कार, जिनमें विवाह संस्कार मुख्य है, करते हैं। यद्यपि इन संस्कारों का जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता हैं जैसे हीरा इत्यादि रत्न खान से निकलने पर न तो देखने में बहुत सुन्दर होते हैं और न तो इनका बहुत मूल्य ही होता है परन्तु खराद के द्वारा कटिंग और पालिश इत्यादि संस्कार हो जाने पर जैसे ये रत्न अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार हम मनुष्यों के जीवन में उपर्युक्त संस्कारों का प्रभाव पड़ता है परन्तु दुर्भाग्यवश लोग इन संस्कारों से धीरे-धीरे दूर होते जा रहे हैं। अस्तु भगवान श्रीराम

को तो वैदिक और लौकिक दोनों ही मर्यादाओं की स्थापना करना था इसलिये जन्म से पूर्व के और जन्म के बाद के सभी संस्कार समय-समय पर विधिवत् होते रहे।

चारों भाइयों का विवाह मिथिला में हुआ। जैसे यहाँ श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न चार भाई थे वैसे ही वहाँ मिथिला नरेश जो दो भाई थे सीरध्वज (जनक) और कुसध्वज। दोनों भाइयों की चार कन्यायें थीं सीता, माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति। चारों बहनों का विवाह क्रम से सीता का विवाह श्रीराम से, माण्डवी का भरत से, उर्मिला का लक्ष्मण से और श्रुतिकीर्ति का विवाह शत्रुघ्न से हुआ। विवाह के बाद चारों भाई अपनी पत्नियों के साथ लौट कर अयोध्या आ गए। अयोध्या में चारों भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ पिता-माता की छत्र-छाया में बड़े सुख से रहने लगे। लगभग १० वर्ष बीत जाने पर महाराजा दशरथ ने बड़े पुत्र श्री रामचन्द्र को राज्य देने का निश्चय किया परन्तु महाराज की दूसरी रानी कैकेयी ने प्रथम महाराज दशरथ से प्रतिज्ञा करवा कर अपने पुत्र भरत के लिए राज्य और राम के लिये १४ वर्ष का बनवास माँग लिया। जब श्रीरामचन्द्र को यह मालूम हुआ कि मुझे वनवास हो गया है तो माता कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए पिता की आज्ञा से अपनी प्रिया सीता और तीसरे भाई लक्ष्मण के साथ बन में चले गए। १४ वर्षों तक श्रीराम को बन में ही रहना था इसलिये प्रथम चित्रकूट में और बाद में बहुत से पहाड़ और जंगलों में भ्रमण करते हुए अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ श्रीराम दण्डकारण्य में जाकर रहने लगे। वनवास के करीब १३ वर्ष बीत चुके थे, चौदहवां वर्ष आरम्भ होते ही लंका के राजा रावण ने मायावी निशाचर मरीच के सहयोग से छल करके श्रीराम की प्रिया सीता का हरण कर लिया। श्रीराम, लक्ष्मण के सहित जब मारीच को मार कर आश्रम में लौटे तब आश्रम में सीता को न देखकर अपनी प्रिया सीता को ढूँढ़ते हुए श्रीराम और लक्ष्मण दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। मार्ग में गीधराज जटायु को श्रीराम ने देखा जिनके दोनों पंख कट चुके थे और जो खून से लथपथ थे श्रीराम की प्रतीक्षा में ही पड़े हुए थे। श्रीराम के पूछने पर गीधराज जटायु ने रावण के द्वारा सीता के हरे जाने का समाचार सुनाया और यह भी सुनाया कि सीता को रावण से मुक्त कराने में ही मेरी यह दशा हुई अर्थात् रावण ने ही मेरे दोनों पंख काट दिये और सीता को लेकर दक्षिण दिशा में चला गया। इस प्रकार सीताहरण का सब समाचार श्रीराम को सुनाकर श्रीराम की ही गोद में गीधराज जटायु ने अपना पंचभौतिक शरीर त्याग दिया। भगवान श्रीराम ने लक्ष्मण के सहयोग से गीधराज का दाह संस्कार किया और पुनः लक्ष्मण के साथ दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। मार्ग में जाते हुए लच्मण के सहित श्रीराम ने परम भक्ता शबरी को दर्शन दिया। शबरी ने परम इष्ट श्रीराम का विधिवत् पूजन किया और कंद-मूल-फल खाने को दिया। लच्मण के सहित श्रीराम ने शबरी के दिये हुए कंद-मूल-फलों को बड़े प्रेम से खाया और शबरी से ही सुग्रीव का पता जानकर लक्ष्मण के सहित श्रीराम पंपा नाम के सरोवर पर पहुँच गए। पंपा सर के समीप ही ऋष्यमूक पर्वत पर अपने मंत्रियों के सहित सुग्रीव रहता था। सुग्रीव के मंत्रियों में से ही एक श्री हनुमान जी थे। श्री हनुमान जी ही के सहयोग से वानर राज सुग्रीव से भगवान श्रीराम की मित्रता हुई उस समय सुग्रीव भी बहुत दुखी था क्योंकि सुग्रीव का बड़ा भाई बालि ने अन्याय पूर्वक सुग्रीव का सब कुछ

हरण कर लिया था और सुग्रीव को मार कर घर से निकाल दिया था। परन्तु अब सुग्रीव भगवान श्रीराम का मित्र बन चुका था। इसलिये श्रीराम ने बालि को मारकर सुग्रीव को बन्दरों का राजा बनाकर पंपापुर का राज्य सौंप दिया। यहाँ यह ध्यान रहे कि बालि केवल सुग्रीव का ही शत्रु नहीं था अपितु श्रीराम का भी परम शत्रु था। क्योंकि बालि के सहयोग से ही लंका के राजा रावण ने नर्वदा नाम की नदी से दक्षिण के करीब-करीब सारी भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था। जबकि उस समय पूरे भारत देश के राजा महाराज दशरथ ही थे परन्तु दशरथ उस समय करीब-करीब वृद्ध हो चुके थे इसलिए रावण ने बालि के सहयोग से भारत का बहुत बड़ा भूभाग जो महाराज दशरथ का ही था अपने अधिकार में कर लिया था।

महाराज दशरथ बहुत ही दूरदर्शी राजा थे। उन्हें विश्वास था कि जैसे मैं युवावस्था में बहुत शक्तिशाली था उसी प्रकार मेरा पुत्र भी अवश्य महान् शक्तिशाली एवम् राजनीति का महान् पंडित होगा तब वह अपना राज्य पुनः शत्रुओं के अधिकार से अपनी दूरदर्शिता एवम् बाहुबल से वापस कर लेगा। श्रीराम ने वैसा ही किया। रावण के द्वारा अधिकृत समस्त दण्डकारण्य को खरदूषण, त्रिशिरा, जो रावण के ही अनुचर थे, को मार कर अपने अधिकार में कर लिया और रावण के बहुत बड़े सहयोगी बालि का भी बध कर दिया। तत्पश्चात् बानरों के राजा सुग्रीव के सहयोग से श्रीराम ने बानरों की बहुत बड़ी सेना एकत्र कर ली। उधर श्री हनुमान जी के द्वारा लंका दहन तथा सीता का लंका में होने का समाचार पाकर श्रीराम ने अपार बानरी सेना के सहित लंका पर चढ़ाई कर दिया। लंका पहुँचने पर श्रीराम और रावण का भयंकर युद्ध हुआ। श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, जामवन्त, अंगद एवम् बानरी सेनाओं के द्वारा रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाथ एवम् लंका के बड़े-बड़े राक्षसों के सहित रावण की सारी सेना मारी गई। लंका के युद्ध में श्रीराम ने विजय प्राप्त किया और श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने लंका में जाकर रावण के छोटे भाई विभीषण का राजतिलक कर दिया। अब लंका के राजा विभीषण हो गए? भगवान श्रीराम की आज्ञा से विभीषण बहुत ही आदर के साथ श्री सीता जी को लेकर श्रीराम के पास पहुँचे। इस प्रकार पुनः श्री सीताराम का मिलन हुआ। तब श्रीराम ने मुख्य-मुख्य बानरों के अतिरिक्त शेष समस्त बानरी सेनाओं को बड़े प्यार के साथ विदा कर दिया। उसके बाद सुग्रीव, जामवन्त, हनुमान, अंगद, नल, नील आदि बड़े-बड़े बानरों एवम् लंका के राजा विभीषण सहित अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान पर बैठकर श्रीराम अयोध्या के लिये चल दिये। समुद्र के इस पार आने पर भगवान् श्रीराम की इच्छा से विमान वहाँ उतरा जहाँ लंका जाते समय श्रीराम ने भगवान शिव की स्थापना किया था। लक्ष्मण सीता के सहित श्रीराम ने भगवान शिव को प्रणाम किया तब पुनः वहाँ से विमान चल पड़ा। मार्ग में जहाँ-जहाँ भगवान श्रीराम ने विश्राम किया था विमान से ही सीता को दिखाते हुए दण्डकारण्य में विमान उतरा वहाँ अगस्त इत्यादि ऋषियों से मिलकर श्रीराम चित्रकूट पहुँचे और चित्रकूट में अत्रि, वाल्मीकि आदि ऋषियों ने श्रीराम का स्वागत किया और श्रीराम ने भी उन ऋषियों को प्रणाम किया। उसके बाद श्रीराम अपने दल के सहित प्रयाग भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचे। इधर बनवास के चौदह वर्ष की

अवधि पूरी हो जानेके कारण अयोध्या के सभी नर-नारी एवम् श्रीराम की माताएं और श्रीराम के दूसरे भाई भरत अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे और विचार कर रहे कि १४ वर्ष की अवधि तो पूरी हो चुकी है, आज तो अन्तिम दिन है फिर भी श्रीराम अभी तक क्यों नहीं आए। विशेष रूप से भरत तो बहुत ही दुखी हो रहे। उसी समय श्रीराम के भेजे हुए श्री हनुमान जी ने आकर भरत को यह शुभ सन्देश दिया कि लंका के युद्ध में विजयी श्रीराम अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के सहित सकुशल अयोध्या पहुँच रहे हैं। श्री सीता लक्ष्मण के सहित श्रीराम के अयोध्या लौट आने की खबर सुनते ही अयोध्या में आनन्द की लहर दौड़ पड़ी। उस समय अयोध्या के समस्त नर-नारी विशेष रूप से श्री भरत ने श्रीराम के स्वागत की बहुत बड़ी तैयारी की। तब तक श्रीराम का पुष्पक विमान अयोध्या की धरती पर उतरा। इधर भरत तो श्रीराम के स्वागत के लिये तैयार थे ही इसलिये विधिवत् स्वागत करके श्रीराम को राजमहल में ले आए।

गुरु वशिष्ठ के निर्देश से मंत्रियों ने बहुत ही शीघ्र राज्याभिषेक की तैयारी की और शुभ मुहूर्त में विद्वान् ब्राह्मणों के सहित गुरु वशिष्ठ ने श्रीराम का राजतिलक कर दिया।

आज से १४ वर्ष पूर्व महाराज श्री दशरथ जिस राम राज्य को इस पृथ्वी पर स्थापित करना चाहते थे वह रामराज्य बानरों के राजा सुग्रीव, लंका के राजा विभीषण, श्री जामवन्त, श्री हनुमान जी, अंगद, नल, नील, श्री लक्ष्मण जी आदि के कठिन परिश्रम से एवम् श्री भरत जी की कठिन तपस्या के फलस्वरूप आज इसी पृथ्वी पर स्थापित हो गया। यह है श्रीराम चरित्र का संक्षिप्त परिचय।

—मानस महारथी त्यागी

श्रीगणेशाय नमः
श्री हनुमते नमः

मानस प्रबोधनी

बाल काण्ड

(प्रथम भाग)

वर्णानां अर्थ संघानां रसानां छन्द सामपि ।
मंगला नां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ॥ १ ॥
भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥ २ ॥
वन्दे बोध मयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥
सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥ ४ ॥
उद्भवस्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम् ।
सर्व श्रेयस्करी सीतां नतोऽहं राम वल्लभाम् ॥ ५ ॥
यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रम्हादि देवा सुरा ।
यत्सत्वाद् मृषैव भाति सकलं रज्जौ यथा हेम्नः भ्रं ।
यत्पादप्लवं मेक मेव हि भवाम्भोधेस्ति तीर्षावतां ।
वन्देऽहं तमशेष कारण परं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥
नाना पुराण निगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-
भाषा निबन्ध मति मञ्जुलमातनोति ॥७॥

अक्षरों, अर्थ समूहों, रसों, छन्दों और मंगलों को करने वाली सरस्वती जी और गणेश जी की मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते ॥२॥

ज्ञानमय, नित्य, शंकर रूपी गुरु की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है ॥३॥

श्री सीता राम जी के गुण समूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले, विशुद्ध विज्ञान-सम्पन्न कवीश्वर श्री वाल्मीकि जी और कपीश्वर श्री हनुमान की मैं वन्दना करता हूँ ॥४॥

उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण

कल्याणों को करने वाली श्री रामचन्द्र जी की प्रियतमा श्री सीता जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भांति यह सारा दृश्य-जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिये एक मात्र नौका है, उन समस्त कारणों से परे राम कहाने वाले भगवान हरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥६॥

अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है, और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करता है ॥७॥

चौ०—एक बार त्रेता युग मांही, शम्भु गये कुम्भज ऋषि पाहीं।

एक बार त्रेता युग में भगवान शंकर कुम्भज ऋषि (अगस्त) के पास गये। रामावतार से पूर्व ही जनहित के विचार से और श्रीराम चरित्र को प्रकट करने के विचार से महर्षि अगस्त के आश्रम में गये क्योंकि उस समय तक राम चरित्र गुप्त था जैसा कि लोमश ऋषि ने उत्तर काण्ड में काग भुशुन्डि से कहा है :

चौ०—राम चरित सर गुप्त सुहावा, शम्भु प्रसाद तात मैं पावा।

महर्षि लोमश के कथन से यह सिद्ध होता है कि उस समय तक राम चरित्र गुप्त था। कुछ ही गिने गुथे त्रिकाल दर्शी ऋषि लोग जानते थे। उनमें से एक महर्षि अगस्त भी थे। भगवान शंकर तो इसके आदि रचयिता थे ही, भगवान शंकर की कृपा से ही कुछ त्रिकालदर्शी ऋषियों को भी श्रीराम चरित्र का ज्ञान था। श्रीराम चरित्र का ज्ञान अधिकांश ऋषियों ने समाधि में भगवान शंकर से प्राप्त किया था क्योंकि समस्त कलाओं—ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और योग सभी के आचार्य भगवान शंकर ही माने जाते हैं जैसा कि भगवती पारवती ने भी कहा है :

दो०—प्रभु समर्थ सर्वग्य शिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ज्ञान बैराग्य निधि प्रणत कल्प तरु नाम ॥

प्रत्येक कल्प में भगवान रामावतार लेते हैं और नाना प्रकार से सुन्दर चरित्र करते हैं।

चौ०—कल्प कल्प लगि प्रभु अवतरहीं, चारु चरित नाना विधि करहीं।
तब तब कथा मुनीसन गाई, परम पुनीत प्रबन्ध बनाई ॥

तब तब ऋषि लोग राम कथा को छन्दोबद्ध करते हैं और गाते हैं और कल्प के अन्त में प्रलय होने पर जैसे जीव और जगत सूक्ष्म रूप से भगवान में निवास करता है, उसी प्रकार समस्त शुभाशुभ कर्म, नाना प्रकार की क्रिया कलाप सब कुछ सूक्ष्म रूप से भगवान में निवास करता है और पुनः सृष्टि आरम्भ होने पर सब कुछ भगवान से प्रकट होता है। यद्यपि कार्य भेद से भगवान के बहुत से रूप हैं तथापि ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग समस्त विद्याओं एवं कलाओं को प्रकट करने में भगवान शंकर प्रधान हैं अर्थात् यह सब भगवान शंकर के द्वारा ही सृष्टि से आरम्भ होकर समय-समय पर प्रकट होते रहते हैं। श्रीराम चरित्र के सम्बन्ध में भी गोस्वामी जी ने ऐसा ही लिखा है :

चौ०—रचि महेश निज मानस राखा, पाइ सुसमय शिवा सन भाषा।
तातें राम चरित मानस वर, धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ।।

भगवान शंकर ने बहुत पूर्व ही श्री रामचरितमानस की रचना की किन्तु अधिकारी श्रोता न मिलने के कारण उसको हृदय में रक्खा था। सुसमय अर्थात् सुन्दर समय एवं अधिकारी श्रोता पार्वती को जानकर भगवान शंकर ने राम चरित्र पार्वती को सुनाया। परन्तु पार्वती से पहले भी ऋषियों की समाधि में शंकर ने भगवान राम के चरित्र का उपदेश दिया है। उनमें से लोमश ऋषि प्रथम हैं। भावार्थ यह है कि भगवान शंकर ही इसके आदि रचयिता हैं और समाधि में बहुत से ऋषियों को समय-समय पर इसका उपदेश दिया है। इस प्रकार से त्रिकाल दर्शी ऋषि रामावतार के पहले इस चरित्र को जानते थे और आपस में कहते-सुनते थे इसलिये भगवान शंकर भी एक बार त्रेता युग में महर्षि अगस्त के आश्रम में राम चरित सुनने के लिये गये। साथ में जगदम्बा सती भी गईं। यद्यपि स्वान्तः सुखाय के लिये ही महर्षि अगस्त से श्री रामचरित सुनना चाहते थे फिर भी जनहित की भावना और त्रिकाल दर्शी ऋषियों के अतिरिक्त अन्य ऋषियों को भी लाभ हो सके इसलिये अगस्त के आश्रम में श्री रामचरित सुनने गये। जब महर्षि अगस्त ने देखा कि जगदम्बा सती के साथ भगवान शंकर मेरे आश्रम में आये हैं तब अखिलेश्वर जानकर विधिवत पूजन किया और भगवान शंकर की प्रसन्नता के लिये उनकी इच्छाओं को जानते हुए कि राम कथा सुनने के लिये ही आये हैं राम कथा सुनाया।

चौ०—रामकथा मुनिवर्य बखानी, सुनी महेश परम सुख मानी।

राम कथा को सुनकर राम कथा के रसिक भगवान शंकर का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। अतः आसुतोष को प्रसन्न जानकर महर्षि अगस्त ने राम भक्ति की याचना की। याचक को पात्र समझ कर आसुतोष ने तथास्तु कह कर भक्ति का वरदान दिया।

चौ०—ऋषि पूछी हरि भगति सुहाई, कही शंभु अधिकारी पाई।

इस प्रकार परस्पर :

चौ०—कहत सुनत रघुपति गुनगाथा, कछु दिन तहाँ रहे गिरि नाथा।

श्रीराम चरित्र कहते सुनते कुछ दिन भगवान शंकर ने महर्षि अगस्त के आश्रम में निवास किया। उसके बाद मुनि अगस्त से विदा लेकर भगवान शंकर सती के साथ अपने आश्रम को चले। उसी अवसर पर पृथ्वी का भार उतारने के लिये श्री हरि ने रघुवंश में अवतार लिया और पिता के वचन से अयोध्या का राज्य त्याग कर दंडकारण्य में विचरण कर रहे थे। (विचरण अर्थात् निवास कर रहे थे)।

चौ०—तेहि अवसर भंजन महि भारा, हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा।
पिता बचन तजि राज उदासी, दंडक वन विचरत अविनासी ।।

अब यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या सती जी के समय में रामावतार था जब कि लीला के प्रसंग में यत्र-तत्र पार्वती जी के आने का प्रसंग मिलता है और स्वयं सीता जी ने

पुष्प बाटिका में गिरिजा जी का पूजन किया है। गिरिजा का अर्थ पार्वती ही है, सती नहीं। सती दक्ष की बेटी हैं, गिरि की नहीं। गिरिजा का अर्थ कोई सती न कर ले इसलिये गोस्वामी जी ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है।

चौ०—मुनि सन विदा मांगि त्रिपुरारी चले भवन संग दक्ष कुमारी।

इस प्रकार और भी स्थलों में गिरिजा जी के आने का प्रसङ्ग मिलता है, जैसे विवाह के प्रसङ्ग में।

'लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन शारद कहैं'।

लहकौरि एक लोक रीति होती है जिसे पार्वती जी श्रीराम को सिखा रही हैं इस प्रकार अनेक स्थलों में पार्वती जी लीला में शामिल हुई हैं।

यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से सती और पार्वती में कोई भेद नहीं है फिर भी व्यवहारिक दृष्टि से बहुत बड़ा भेद है। पारमार्थिक दृष्टि से कोई भेद नहीं है, इसका प्रमाण पार्वती जी के कथन से मिलता है। बाल काण्ड में पार्वती जी ने राम कथा सुनने की इच्छा से प्रश्न किया है। उस प्रश्न के संदर्भ में पार्वती जी ने अपना कुछ संदेह भी प्रकट किया है उसी स्थल में पार्वती जी कह रही हैं :

चौ०—मैं वन दीख राम प्रभुताई, अति भय विकल न तुम्हहि सुनाई।
तदपि मलिन मन बोध न आवा, सो फल भली-भाँति मैं पावा।
अजहूँ कछु संशय मन मोरे, करहु कृपा विनवहुं कर जोरे।
प्रभु तब मोहिं बहु भाँति प्रबोधा, नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस विमोह अब नाहीं, राम कथा पर रुचि मन माहीं॥

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि पार्वती ही पुर्व जन्म में सती थीं। यहाँ पार्वती सती के रूप में राम की प्रभुता देखने की बात कह रही हैं। लीला देखने की नहीं और न लीला में भाग लेने की बात कह रही हैं। लीला और प्रभुता में बहुत बड़ा अन्तर है। लीला करने के लिये एवं लीला का विस्तार करने के लिये भगवान श्री हरि को अवतार लेना पड़ता है और अवतार लेकर क्रम से जन्म लीला, बाललीला, किशोर लीला, विवाह लीला, वन लीला, युद्ध लीला, और अन्त में रामलीला करके मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को मानवीय मर्यादाओं की स्थापना एवं मानवीय धर्मों की शिक्षा मानव समाज को देना पड़ता है। और इन समस्त मानवीय आदर्शों को उपस्थित करने के लिये श्रीराम ने अपने जीवन काल में आरम्भ से अन्त तक मानव समाज के सन्मुख शुद्ध और सुन्दर नर लीला ही किया है। यही है श्रीराम की लीला।

प्रभुता कहते हैं अलौकिक घटनाओं को। पार्वती के कहने के अनुसार यह सिद्ध होता है कि सती के शरीर में उन्होंने श्रीराम की प्रभुता देखी थीं और अब स्वयं पार्वती के रूप में श्रीराम की लीला देखी और भाग लिया। लीला में माधुर्य प्रधान होता है और प्रभुता में ऐश्वर्य की प्रधानता होती है। प्राकृत मनुष्यवत आचरण को माधुर्य कहा जाता है और लोकोत्तरचरित्र, जिसको मनुष्य नहीं कर सकता है, उसे ऐश्वर्य कहा जाता है। माधुर्यमयलीला एवं

ऐश्वर्यमय लीला इन दोनों प्रकार की लीलाओं का उदाहरण उत्तरकाण्ड में बहुत ही सुन्दर मिलता है जब भगवान श्रीराम कागभुसुन्डि के समक्ष बाल लीला कर रहे थे। प्रथम माधुर्यमय लीला का उदाहरण —

दो०—लरिकाई जहँ-जहँ फिरहिं, तहं-तहं संग उड़ाउं।
जूठनि परे अजिर महं, सो उठाई करि खाउं ॥ (७।७५)

इस दोहे से आरम्भ करके :—

दो०—आवत निकट हंसहि प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि-फिरि चितइ पराहिं ॥ (७।७७)

यहाँ तक, यह है लीला, इसी को माधुर्य भी कहा जाता है।

अब कागभुसुन्डि ने जब श्रीराम को इस प्रकार से माधुर्यमय बाल लीला करते देखा तब मन में सन्देह हुआ कि यह क्या? मेरे प्रभु तो सनातन ब्रह्म हैं फिर यह कैसी लीला। कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी गिरते हैं, कभी किलकारी मार कर मुझे पकड़ने दौड़ते हैं। ज्योंही कागभुसुन्डि ने अपने मन में तर्क करना आरम्भ किया त्योंही श्रीराम् की प्रेरणा से माया ने कागभुसुन्डि को पकड़ लिया। माया द्वारा ग्रसित होते ही कागभुसुन्डि को जो अब तक माधुर्यलीला का आनन्द मिल रहा था वह मिलना बन्द हो गया और कागभुसुन्डि को अपने इष्ट देव पर सन्देह हो गया। साथ ही बुद्धि भी भ्रमित हो गयी। तब बालक श्रीराम ने भ्रम से चकित कागभुसुन्डि को देखकर मन में विचार किया कि कागभुसुन्डि मेरी माधुर्य लीला को देखकर भ्रमित हो गया है इसलिये अब इसके सामने मुझे अपना ऐश्वर्यमय अर्थात् अलौकिक लीलाओं को प्रकट करना पड़ेगा।

उत्तरकाण्ड दोहा नं० ७८ के नीचे चौथी अर्धाली से—

चौ०—भ्रम से चकित राम मोहि देखा, बिहंसे सो सुनु चरित विसेखा। (७।७८।४)

यहाँ से आरम्भ करके—

दो०—देखि कृपालु विकल मोहि, विहंसे तब रघुवीर।
विहंसत ही मुख वाहेर, आएउं सुनु मतिधीर ॥ (७।८२ क)

यहाँ तक। यह है प्रभु की प्रभुता। इसी को ऐश्वर्य भी कहते हैं। अतः अब हम अपने पूर्व प्रसंग पर चलते हैं।

पार्वती के कथनानुसार कि 'मैं बन दीख राम प्रभुताई' से यह सिद्ध होता है कि पार्वती ने सती शरीर में श्रीराम की प्रभुता को देखा था। लीला में शामिल नहीं हुई थीं। इससे यह प्रमाणित हुआ कि सती के समय में रामावतार का काल नहीं था।

चौ०—तेहिं अवसर भंजन महिं भारा, हरि रघुवंस लीन्ह अवतारा।

उसी अवसर पर अब भगवान शंकर महर्षि अगस्त के आश्रम से विदा होकर अपने आश्रम को जा रहे थे, पृथ्वी का भार उतारने के लिये हरि ने रघुवंश में अवतार लिया। इसका समाधान कैसे हो? उत्तर—अभी अभी महर्षि अगस्त के मुख से भगवान शंकर राम

कथा सुनकर आ रहे हैं और ऐसा नियम होता है कि प्रसंग में भगवान वेदव्यास ने लिखा है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णु स्मरणं पाद सेवनं इत्यादि ।

इत्यादि वाक्यों से हमें यही उपदेश मिलता है कि भगवत चरित सुनने के बाद कीर्तन व स्मरण करना चाहिये । ठीक इसी नियम के अनुसार भगवान शंकर जो कि राम कथा के प्रथम वक्ता के साथ-साथ श्रोता भी हैं, कथामृत को पान करने के लिये आवश्यकतानुसार अन्य शरीरों को भी धारण करते हैं जैसे कागभुसुन्डि के आश्रम में हंस का रूप धारण करके कागभुसुन्डि के मुख से श्रीराम चरितामृत को आपने पान किया है । उत्तरकाण्ड में जब आपसे पार्वती ने यह प्रश्न किया कि हे कामदेव के शत्रु मुझे यह बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आपने कागभुसुन्डि से जाकर कैसे कथा सुनी ।

चौ०—तुम केहि भांति सुना मदनारी, कहहु मोंहि अति कौतुक भारी ।

इसके उत्तर में भगवान शंकर ने कहा है कि हे पार्वती : उत्तर दिशा में एक सुन्दर नीलगिरि नाम का पर्वत है जहाँ कागभुसुन्डि जी रहते हैं और निरंतर प्रेम और आदर के साथ राम कथा सुनाते हैं । ताकि कागभुसुन्डि पक्षि भाषा में राम कथा सुनाते हैं, बड़े-बड़े ऋषि महर्षि पक्षी का रूप धारण करके कागभुसुन्डि के आश्रम में राम कथा सुनने नित्य आया करते हैं । जब मैंने जाकर यह कौतुक देखा तब मैंने भी कुछ समय तक हंस का रूप धारण कर कागभुसुन्डि के मुख से श्रीराम कथा श्रवण किया ।

दो०—तव कछुकाल मराल तनु, धरि तहं कीन्ह निवास ।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलाश ।। (७।५७)

इस प्रकार राम कथा के परम रसिक श्रोता भी आप माने जाते हैं । अतः अभी अभी कुछ क्षण पूर्व महर्षि अगस्त के मुख से कथा श्रवण किया है और विदा होकर अपने आश्रम के लिये चल रहे हैं । यद्यपि एक ओर आपका स्थूल शरीर मार्ग में चल रहा है परन्तु फिर भी दूसरी ओर चित्त की समस्त वृत्तिओं के साथ मन श्रीराम चरित्र में तल्लीन हो रहा है मानों आश्रम में पहुँचने का संकल्प ही अन्धे की लाठी की भाँति शरीर को मार्ग में चला रहा हो । मन तो वाह्य एवं आन्तरिक जगत की समस्त सद्-असद् चेष्टाओं से विरत होकर श्रीराम चरित्र चिन्तन में तल्लीन हो रहा है । चिन्तन का क्रम "भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी" अर्थात् राम जन्म से आरम्भ हुआ है । महर्षि अगस्त ने श्रीराम चरित्र सुनाया है इसलिये जिस क्रम से आपने कथा श्रवण किया है उसी क्रम से मन श्रीराम चरित्र का चिन्तन कर रहा है । चिन्तन के जगत में सर्वप्रथम श्री साकेत धाम जो इस धरातल पर अवध के रूप में अवतरित हुआ है मानों वही अवध प्रदेश के सरयू के पूर्व-दक्षिण तट पर अवतरित हुआ था वही आज भगवान आशुतोष भूतभावन शंकर के चिन्तन के जगत में हृदय भूमि पर प्रकट हुआ । वही सरयू, वही श्रीअवध के सब बाग बगीचे, वही अयोध्या के राजमहल एवं समस्त राजपरिवार के साथ वही महाराज श्री दशरथ, वही कौशल्या, कैकई, सुमित्रा आदि वही अब तक दशरथ के पुत्र न होने की ग्लानि से गुरु वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचना

चौ०—एक बार भूपति मन माही, भइ ग्लानि मोरे सुत नाहीं ।
गुरु गृह गयो तुरत महिपाला, चरण लागि करि विनय विशाला ।।

गुरू वशिष्ठ के समीप पहुँच कर श्रीगुरु जी के चरणों में प्रणाम करना और अब तक पुत्र न होने के शोक से शोकातुर होकर पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछना। गुरु वशिष्ठ के द्वारा एक नहीं अपितु चार-चार पुत्र का आशीर्वाद प्राप्त होना, गुरु वशिष्ठ के द्वारा ऋषि शृंगी को बुलाना, ऋषि शृंगी के द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ करना, ऋषि शृंगी के द्वारा भक्तिपूर्वक आहुति देने पर हाथ में चरू अर्थात् खीर लेकर यज्ञ पुरुष का प्रकट होना और महर्षि वशिष्ठ के द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद को सत्य कहकर उक्त खीर को यथा योग्य तीनों रानियों को खिलाने का आदेश देकर यज्ञ पुरुष अग्नि देव का अदृश्य हो जाना, यज्ञ पुरुष अग्नि देव के द्वारा दी हुई खीर को खाकर तीनों रानियों का गर्भवती होना :—

चौ०—यहि विधि गर्भसहित सब नारी, भई हृदय हर्षित सुख भारी।
सुख युत कछुक काल चलि गयऊ, जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ।।

सुख पूर्वक पूरे एक वर्ष व्यतीत होने पर 'योग लगन ग्रह बार तिथि सकल भये अनुकूल, चर अरु अचर हर्ष युक्त राम जनम सुख मूल''।

नवमी तिथि चैत्र मास, मंगलवार, पुनर्वसु, नक्षत्र, अभिजित मुहूर्त, मध्याह्न काल पाँच ग्रहों को अपने परम उच्च स्थान पर स्थित हो जाने पर और परब्रह्म का श्रीराम के रूप में प्रादुर्भाव होने का समय जान कर ब्रह्मादिक समस्त देवताओं का अयोध्या में जाकर भगवान श्री हरि से प्रकट होने की प्रार्थना करना :—

दो०—सुर समूह विनती करि पहुंचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम ।। (१।१९१)

जैसे कभी पूर्व कल्प में महाराज श्री दशरथ की बड़ी महारानी कौशल्या के गर्भ से अयोध्या के राजमहल में भगवान श्री हरि श्रीराम के रूप में प्रगट हुए थे ठीक वैसे ही आज भगवान श्री शंकर के चिंतन के जगत में हृदय रूपी अम्बा कौशल्या के अन्तःपुर में तनमयता रूपी श्री कौशल्या के गर्भ से भगवान श्रीराम का प्रादुर्भाव होना।

छन्द—भय प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी,
हर्षित महतारी मुनिमन हारी, अद्भुत रूप विचारी।

इस प्रकार एक के बाद दूसरा दृष्य चित्रपट की भाँति भगवान आशुतोष के चित्रपट पर उभर रहा है और जिनकी बाह्य एवं आन्तरिक सभी सद्-असद् वृत्तियाँ करीब-करीब लीन हो चुकी हैं साथ ही तनमयता अपनी चरम सीमाओं को पार कर चुकी है। यही कारण है कि तनमयता भगवान शंकर के चिंतन के जगत में हृदय पट पर उस सनातन ब्रह्म ने एक-एक अंग पर करोड़ों-करोड़ों कामदेव को लज्जित करने वाले विश्व विमोहन श्रीराम को लाकर प्रगट कर दिया है और अब भगवान शंकर के हृदय पट पर दिव्यातिदिव्य रस से ओत-प्रोत अनन्त कोटि ब्रह्मांड को पवित्र करने वाली भूत भावन शिव के इष्ट देव बालक श्रीराम की परम मंगलमयी, आनन्दमयी, माधुर्यमयी, दैहिक, दैविक, भौतिक त्रितापों को विनष्ट करने वाली बाल-लीला आरम्भ होती है।

कभी आप चन्द्रमा माँगते हैं—मैया मैं चन्द्रमा लूँगा, चन्द्रमा के न मिलने पर आप

रूठ जाते हैं। बालक श्रीराम के रूठ जाने पर दशरथ समेत सभी रानियाँ वास्तविक चन्द्रमा देने में अपने को असमर्थ जानकर कुछ उदास सी हो जाती हैं। यह देखकर बालक श्रीराम भक्तों को सुख देना ही एकमात्र जिनका उद्देश्य है अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर डरने के बहाने से दौड़कर अपनी प्यारी मैया कौशल्या की गोद में बैठकर मैया के हृदय से लिपट जाते हैं। अपना लाडला बेटा रामलला को डरा हुआ जानकर कौशल्या के समेत सभी रानियाँ एवं महाराज श्री दशरथ के मुख पर वात्सल्य युक्त मुसकान छा जाती है। दूसरी ओर जब श्रीराम यह देखते हैं कि मुझे भीरु समझ कर मेरी मैया एवं पिता भी मुस्करा रहे हैं तब आप पुनः गोद से उठकर किलकारी मारते हुए भाग कर नृत्य करने लगते हैं।

सहज रूप से प्राकृत बालक के समान बाल-लीला करते हैं और अपने माता-पिता एवं वहाँ उपस्थित सभी भक्तजनों को वह सुख देते हैं जिस सुख को प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े अमल आत्मा परमहंस मुनि लोग तरसते रहते हैं :—

पद—कबहूँ शशि मांगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥ इत्यादि
चौ०—बाल चरित्र हरि बहुविधि कीन्हा, अति अनन्द दासन्ह कंह दीन्हा।

इस प्रकार बाल-लीला के बाद किशोर-लीला, उसके बाद विश्वामित्र का आगमन, विश्वामित्र के साथ श्रीराम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के आश्रम में पहुँच कर ताड़का, सुबाहु का वध एवं यज्ञ की रक्षा करना, विश्वामित्र के आश्रम से जनकपुर जाते हुए अहिल्या का उद्धार करना और मिथिला पहुँचने पर प्रथम पुष्प वाटिका में राजकुमारी श्री सीता जी एवं राजकुमार भगवान श्रीराम का मिलन स्वयम्वर की परम्परा से भगवती गिरिजा की सन्निधि में राजकुमारी श्री सीताजी के द्वारा पति के रूप में श्रीराम का वरण, राजकुमारी श्री सीताजी के द्वारा अपने को पति के रूप में वरण किये जाने पर भी दूसरे दिन धनुष यज्ञ में द्वीप-द्वीप से आये हुए समस्त राजाओं के समक्ष अपने प्रचन्ड भुज बल से भगवान शंकर के विशाल धनुष को तोड़कर विदेह राज महाराज श्री जनक की प्रतिज्ञा पूरी की और त्रिभुवन विजय की उपाधि के सहित असीम सुन्दरी विदेह राज की तनया श्री सीता के कर कमलों से धारण की हुई विश्व विजय की शोभा से युक्त जयमाला के सहित धर्म पत्नी के रूप में श्रीराम ने सीता को वरण किया।

यह सब लीलायें आशुतोष भूतभावन शंकर के रामचरित चिन्तन के जगत में चित्रपट की भाँति चित्पट पर चल रही हैं। इसके बाद परशुरामजी आते हैं। श्रीराम और लक्ष्मण के साथ परशुराम का द्वन्द्व युद्ध होता है। अन्त में उस द्वन्द्व युद्ध में श्रीराम से पराजित होकर अपना धनुष श्रीराम को सौंप कर परशुराम पुनः तपस्या करने के लिये अपनी तपोभूमि में वापस लौट जाते हैं। उसके बाद जनक जी के द्वारा भेजे हुये दूत के मुख से श्रीराम के द्वारा धनुष तोड़े जाने के समाचार सुनकर एवं जनक का निमन्त्रण प्राप्त कर दशरथ जी बारात साज कर जनकपुर में जाते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाइओं का विवाह करने के उपरान्त पुनः लौटकर अयोध्या आ जाते हैं और अयोध्या में लगभग दस वर्ष तक श्रीराम बड़े ही आमोद-प्रमोद के साथ रहते हैं। श्रीराम को सब प्रकार से सुयोग्य

जानकर महाराज श्री दशरथ गुरु वशिण्ठ एवं मन्त्रियों के परामर्श से श्रीराम के लिये राज्याभिषेक की तैयारी करते हैं। परन्तु दशरथ की मँझली रानी कैकेयी ने मन्थरा के सहयोग से अपने पुत्र भरत के लिये राज्य और श्रीराम के लिये चौदह वर्ष का कठोर बनवास माँग लिया। श्रीराम की मुख श्री जो कि राज्याभिषेक सुनकर प्रसन्नता को नहीं प्राप्त हुई थी न तो चौदह वर्ष के कठोर बनवास को सुनकर मलीन ही हुई अर्थात् श्रीराम को राज्याभिषेक सुनकर न तो हर्ष हुआ और न ही कठोर बनवास सुनकर विषाद हुआ अपितु पिता की आज्ञा से वहराज श्री जिसको देखकर देवराज इन्द्र भी सिहाते थे त्याग कर प्रसन्नता के साथ बन में चले गये।

दो०—पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुवीर।
विसमय हर्ष न हिये कछु पहिरे बलकल चीर।। (२।१६५)

भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता ने भी श्रीराम का साथ दिया। तीनों ने ही अयोध्या से निकलकर प्रथम रात्रि तमसा नदी के तट पर निवास किया परन्तु अयोध्या की सारी प्रजा जो कि अयोध्या से ही श्रीराम के साथ चल रही थी चौदह वर्ष तक श्रीराम का साथ देने के लिये, प्रथम तो श्रीराम ने उन सभी प्रजाओं को समझाया अयोध्या लौट जाने के लिये परन्तु श्रीराम से अत्यधिक प्रेम होने के कारण जब वे लोग वापस लौटने को नहीं तैयार हुये तब श्रीराम ने अपनी उन प्यारी प्रजाओं को जो शोक और थकान के कारण कुछ देवताओं की माया से मोहित हो जाने के कारण भी तमसा के तट पर सो गयी। तम अर्थात अन्धकार के गोद में उस सोती हुई प्रजा को छोड़कर अर्धरात्रि के समय में भाई लक्ष्मण पत्नी सीता के साथ सारथी सुमन्त के सहयोग से चले गये। प्रातः शृंगवेरपुर पहुँचकर लक्ष्मण और अपनी प्रिया जानकी के सहित श्रीराम ने भगवती भागीरथी को प्रणाम किया। वह रात्रि पतित पावनी भगवती भागीरथी के तट पर ही शिंसुपा पेड़ के नीचे श्रीराम ने बिताया। दूसरे दिन प्रातः सुमन्त को गंगा तट पर ही छोड़कर निषादराज गुह के सहयोग से गंगापार कर श्रीराम ने आगे की यात्रा आरम्भ की। तीसरी रात्रि शृंगवेरपुर और प्रयाग के मध्य में ही वृक्ष के नीचे श्रीराम ने व्यतीत की। चौथे दिन प्रातः श्रीराम प्रयाग पहुँच जाते हैं। प्रयाग पहुँच कर तीर्थराज प्रयाग का दर्शन और त्रिवेणी स्नान आदि के उपरान्त वह रात श्रीराम ने महर्षि भरद्वाज के आश्रम में बिताया। पाँचवें दिन प्रातः महर्षि भरद्वाज से बिदा होकर श्रीराम ने यमुना पार किया। यमुना पार करने के पश्चात निषादराज गुह को विदा कर :—

चौ०—देखत बन सर सैल सुहाये, बाल्मीकि आश्रम आये।

बाल्मीकि के आश्रम में पहुँच कर महर्षि बाल्मीकि से सत्कृत होकर और अपने रहने के लिये स्थान पूँछ कर श्रीराम भाई लक्ष्मण और प्रिया जानकी के साथ चित्रकूट पहुँच जाते हैं। चित्रकूट को देखकर श्रीराम को बहुत ही प्रसन्नता हुई और श्रीराम ने निश्चय किया वहाँ कुछ समय तक निवास करने का। श्रीराम की इच्छा चित्रकूट में रहने की है यह जानकर समस्त देवता, कोल, किरात के रूप धारण कर श्रीराम के समीप आते हैं। लक्ष्मण और सीता के समेत श्रीराम का दर्शन प्राप्त कर अपने को कृत-कृत्य मानते हैं और श्रीराम के लिये सुन्दर पर्णकुटिया का निर्माण करते हैं। उनमें एक बहुत ही सुन्दर छोटी लक्ष्मण के

लिये और दूसरी परम सुन्दर और विशाल श्रीराम के लिये । कोल किरात के रूप में देवताओं के द्वारा निर्मित सुन्दर पर्णकुटिया में लक्ष्मण एवं श्रीराम निवास करते हैं । चित्रकूट में भगवान श्रीराम रह रहे हैं, यह जानकर दूर-दूर से कोल किरात लोग अपने-अपने परिवार के साथ आते हैं और श्री लक्ष्मण के समेत श्री सीताराम को देखकर अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं और सपरिवार सेवक के रूप में श्रीसीताराम की सेवा के लिये अपने को समर्पित करते हैं । इसी प्रकार दूर-दूर से बड़े-बड़े अमल आत्मा परम हंस मुनि लोग जो कि पूर्व से ही यह जानते थे कि ब्रह्म श्रीराम इस प्रेम भूमि चित्रकूट में एक दिन आयेंगे, अन्यान्य तपोवनों से आकर इस चित्रकूट में बहुतकाल से श्रीराम की प्रतीक्षा में थे, वे आकर श्रीराम के दर्शन प्राप्त करते हैं और अपने को कृत-कृत्य मानते हैं ।

श्रीराम ने अपने बनवास के चौदह वर्ष की अवधि में से अधिक समय चित्रकूट में ही बिताया और अनेकानेक दिव्य मगंलमयी माधुर्यमयी लीलाओं को किया । उन मङ्गलमयी माधुर्यमयी लीलाओं को रसिक शिरोमणि श्रीराम और श्रीराम की आह्लादिनी शक्ति श्री किशोरी जानकीजी की ही कृपा से आशुतोष भगवान शंकर जैसे महान आत्मा ही जान सकते हैं । चित्रकूट प्रेम भूमि होने के कारण ब्रह्म श्रीराम की नित्य लीला स्थली है । चित्रकूट में श्रीराम ब्रह्म के रूप में निवास करते हैं । और ब्रह्म, सनातन, त्रिगुणातीत समस्त शुभाशुभ कर्मों से परे सर्व तन्त्र स्वतंत्र होते हैं फिर भी भक्त प्रेमाधीन अपने अनुग्रहमय स्वभाव के अधीन होकर भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये लीलामय सगुण शरीर धारण करते हैं और भक्त जिन्होंने कि भगवत् अनुग्रह से शत्रु-मित्र, मान, अपमान, शीतोष्ण, दुख, सुखादि इन समस्त द्वन्दों पर विजय प्राप्त कर लिया है साथ ही जिनका चित्त संसार की समस्त भोग वस्तुओं से विरत होकर अपने प्रेमास्पद इष्ट देव के द्वन्द चरण कमलों में अनुरक्त हो गया है उन अपने रसिक भक्तों को इस द्वन्द्वात्मक जगत से परे अपनी माधुर्यमयी लीला से सुख प्रदान करते हैं ।

उपर्युक्त भावानुसार त्रैलोक्यपावनी लीलाओं को करते हुए भगवान श्रीराम ने बहुत समय तक चित्रकूट में व्यतीत किया । अब श्रीराम ने चित्रकूट छोड़कर दण्डकारण्य में पहुँच कर कुछ समय तक निवास करने का विचार किया इसलिये चित्रकूट के सभी ऋषियों से विदा होकर उनमें प्रथम महर्षि अत्रि से मिल कर श्रीराम ने भाई लक्ष्मण एवं प्रिया जानकी के साथ अपनी यात्रा आरम्भ की । मार्ग में सरभंग ऋषि एवं सुतीक्षण आदि ऋषियों को दर्शन देते हुए श्रीराम दण्डकारण्य के समीप महर्षि अगस्त के आश्रम में पहुँच जाते हैं । इस प्रकार आरम्भ से लेकर यहाँ तक एक के बाद दूसरा दृश्य भगवान शंकर के हृदय पटल पर उभर रहा है ।

भगवान शंकर के चिंतन की भित्ति पर ज्यों-ज्यों श्रीराम दण्डकारण्य के समीप पहुँच रहे हैं त्यों-त्यों भगवान शंकर की तन्मयता अपनी चरम सीमा को पार कर रही है और यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार से यमुना और गंगा दोनों का उद्गम स्थान एक ही हिमालय है ठीक उसी प्रकार से श्रीराम और भगवान शंकर दोनों ही महर्षि अगस्त के आश्रम से ही चल करसंभवतः भिन्न-भिन्न मार्गों से दण्डकारण्य में पहुँच रहे हैं । यहाँ दण्डकारण्य

की तुलना तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी संगम से की जा सकती है जैसे तीर्थराज प्रयाग में यमुना, गंगा, सरस्वती तीनों मिलकर सर्वश्रेष्ठ एवं पवित्रतम तीर्थराज के रूप में अपने को प्रगट करती हैं ठीक उसी प्रकार से अब तक जो भगवान की मङ्गलमयी लीला भगवान शंकर के चितपट पर ही चित्रपट की भाँति चल रही थी और भगवान शंकर का मन वाह्य एवं आन्तरिक समस्त सद्असद् चेष्टाओं से विरत होकर जिस लीला में तल्लीन हो रहा था अब वही भगवान श्रीराम की मंगलमयी लीला भगवान शंकर के सन्मुख उस पवित्रतम दण्डकारण्य में प्रगट होने की स्थिति में आ गई है। यहाँ यमुना को भगवान श्रीराम का प्रतीक और गंगा को भगवान शंकर का प्रतीक मानना चाहिए और सीता ही अप्रगट रूप से मायामयी सीता के हरण हो जाने पर भी जो श्री राम के साथ हैं सरस्वती के रूप में समझना चाहिए। अभी-अभी कुछ समय पूर्व जो भगवान शंकर महर्षि अगस्त के आश्रम से कथा सुनकर एवं विदा होकर अपने आश्रम अर्थात कैलाश की ओर जा रहे थे और जिनका मन श्रीरामचरित्र चिंतन में तल्लीन हो रहा था जिनके चित-पट पर चलचित्र की भाँति भगवान श्रीराम की मंगलमयी लीला चल रही थी एक ओर से श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के साथ दण्डकारण्य पहुँच जाते हैं दूसरी ओर से भगवान शंकर भी दण्डकारण्य के समीप पहुँच जाते हैं। भगवान श्रीराम की लीला में जिनका मन कीट और भृंगी की भाँति तद्रूप हो चुका है वह भगवान शंकर दण्डकारण्य के समीप पहुँच कर अपने प्रेमास्पद इष्टदेव भगवान श्रीराम के प्रेम में प्रमोन्मत्त होकर और अब जिनके लिये आन्तरिक जगत और वाह्य जगत में कोई भेद नहीं रह गया है और जो यह भूल ही गए हैं कि अभी मैंने महर्षि अगस्त के मुख से कथा सुनी है अपितु प्रेम की चरम सीमा पर पहुँच जाने के कारण जहाँ संयोग में वियोग और वियोग में संयोग की अनुभूति होती है भगवान शंकर के समक्ष एकाएक सीता वियोगी श्रीराम का लक्ष्मण के सहित अघटित घटना के रूप में प्रादुर्भाव होता है।

चौ०—तेहि अवसर भंजन महिभारा, हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा।
पिता वचन तजि राज उदासी, दण्डक वन विचरत अविनासी॥

यहाँ सती इस अलौकिक घटना से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। क्योंकि सती ने भगवान शंकर की भाँति मन लगाकर श्रीराम कथा को नहीं सुना था और न तो भगवान शंकर की भाँति सती का मन ही श्रीरामचरित्र चिंतन में तल्लीन था। इसलिये अभी-अभी भगवान शंकर के समक्ष जो श्रीराम का भावावतार हुआ उससे सती पूर्णतः अनभिज्ञ हैं अस्तु, अब भगवान शंकर विचार करते हैं कि मेरे इष्टदेव भगवान श्रीराम इसी दण्डकारण्य में निवास कर रहे हैं कि 'केहि विधि दर्शन होइ' क्योंकि गुप्त रूप में प्रभु ने अवतार लिया है। मेरे जाने से सब लोग उनको जान जायेंगे।

दो०—हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दर्शन होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गए जान सब कोइ॥

'केहि विधि दर्शन' का भाव है कि विधियाँ चार होती हैं जिनके द्वारा हम भगवान के

दर्शन कर सकते हैं—(१) दास्य भाव, (२) सख्य-भाव, (३) वात्सल्य भाव और (४) माधुर्य महा-भाव। यहाँ विधि का अभिप्राय इन्हीं से है। यद्यपि भगवान शंकर सभी विद्यायें-ज्ञान, वैराग्य, योग, भक्ति एवं भक्ति के चार रस वात्सल्य, सख्य, दास, माधुर्य सभी के आचार्य हैं परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को माधुर्य महाभाव के द्वारा एक मात्र सीता जी ने ही पति के रूप में प्राप्त किया है। औरों को सफलता नहीं मिली है। इसलिये भगवान शंकर भी सभी रसों में सिद्ध होते हुए भी श्रीराम के दर्शन के लिए श्रीराम के समीप तीन ही विधियों से जा सकते हैं—(१) वात्सल्य भाव के अनुसार माता-पिता, गुरू बनकर (२) मित्र बनकर, और (३) दास बनकर। परन्तु यहाँ भगवान शंकर विचार कर रहे हैं कि इन तीनों में से किसी भी रूप में वहाँ जाना मेरे लिये अथवा मेरे इष्टदेव श्रीराम के लिये उपयुक्त नहीं होगा।

(क) यदि मैं वत्सल्य विधि से जाता हूँ तो अभी-अभी मेरे इष्टदेव श्रीराम अपनी प्रिया के वियोग में अत्यन्त माधुर्यमय लीला करेंगे। विरहातुर श्री राम यहाँ विरही और अति कामी की भाँति नरनाट्य करेंगे। मुझे वात्सल्य भाव के अनुसार गुरु जन के रूप में देखकर श्रीराम को महा विरही व अतिकामी का नरनाट्य करने में संकोच होगा। इसलिये वात्सल्य विधि से मुझे श्रीराम के दर्शन के लिये नहीं जाना चाहिए।

(ख) यदि मैं सख्य भाव के अनुसार मित्र बनकर जाता हूँ तो अभी-अभी श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीता के वियोग में अत्यन्त दुख को प्राप्त होकर व्याकुल होंगे एवं विलाप करेंगे। उस समय व्यवहारिक दृष्टि से मित्र के रूप में मुझे भी मित्र के दुख से दुखी होकर दुखी होना पड़ेगा एवं मित्र के साथ मुझे भी व्याकुल होकर विलाप करना पड़ेगा। यह सब मुझसे न हो पायेगा। इसलिये उक्त विधि से जाना भी उचित नहीं ठहरता है।

(ग) यदि मैं दास बनकर जाता हूँ तो मुझे श्रीराम के श्री चरणों में साष्टांग दण्डवत करना पड़ेगा जिससे मेरा शिष्य रावण श्रीराम को एवं श्रीराम के ऐश्वर्य को जान जायगा और तब श्रीराम से शत्रुता नहीं करेगा।

चौ०—रावन मरन मनुज कर जाँचा, प्रभु विधि वचन कीन्ह चह सांचा।
जो नहिं जाउं रहहि पछितावा, करत विचार न बनत बनावा।
एहि विधि भये सोच बस ईसा, तेही समय जाइ दससीसा।
लीन्ह नीच मारीचहिं संगा, भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा॥
करि छल मूढ़ हरी वैदेही, प्रभु प्रभाव तस विदित न तेही॥

इस प्रकार ईश अर्थात भगवान शंकर सोच के वश में हो गए कि किस प्रकार से भगवान का दर्शन हो। यदि मैं जाता हूँ और श्रीराम का दर्शन एवं श्रीराम की पूजा करता हूँ तो मेरा शिष्य रावण श्रीराम से शत्रुता करने का साहस नहीं करेगा जब कि श्रीराम रावण को मारने के लिये एवं ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिये ही अपने ऐश्वर्य को छिपाए हुए हैं और नर रूप से ही रावण का वध करना चाहते हैं, मेरे जाने से श्रीराम का ऐश्वर्य प्रगट हो जायगा।

इस प्रकार भगवान शंकर इस द्वन्द में फँस कर 'जाऊँ कि नहीं जाऊँ' ऐसा विचार कर ही रहे थे कि इतने में ही रावण ने मारीच की सहायता से दण्डकारण्य में जाकर वैदेही का हरण कर लिया। सीता के हरण हो जाने पर सीता वियोगी श्रीराम लक्ष्मण के साथ अपनी प्रिया सीता को ढूँढ़ते हुए एवं नरनाट्य की दृष्टि से महाविरही, अतिकामी के सदृश विलाप करते हुए आसुतोष भगवान शंकर के समक्ष प्रगट हो जाते है।

यहाँ इस अभिनय से भगवान श्रीराम ने मानव समाज को यह शिक्षा दिया कि जीव के हृदय में यदि मुझसे मिलने की उत्कट लालसा है तो भले ही वह साधन विहीन क्यों न हो और मेरे दर्शन के लिये साधन या कोई उपाय नहीं कर सकता हो परन्तु मेरे दर्शन के लिये व मुझे प्राप्त करने के लिये यदि मुझमें वह एकनिष्ठ है तथा उसका चित्त मुझमें अनुरक्त है तो मैं उसके लिये स्वयं उपाय ढूंढ़ कर उस जीव के सन्मुख प्रगट होकर उसके संतप्त हृदय को अपने दर्शन के द्वारा आनन्द से भर देता हूँ। जैसे यहाँ भगवान शंकर की स्वयं स्थिति है क्योंकि भगवान श्रीराम के दर्शन करने में भगवान शंकर सर्व समर्थ होते हुए भी किसी विशेष कारण से श्रीराम के दर्शन के लिये जाने में असमर्थ थे परन्तु भगवान श्रीराम के दर्शन के लिये व्याकुल थे तो स्वयं श्रीराम ने अपनी प्रिया जानकी को ढूंढ़ने के बहाने से भगवान शंकर के सन्मुख प्रगट होकर उनके हृदय में आनन्द भर दिया। उस समय भगवान शंकर ने जब यह देखा कि मेरे इष्टदेव श्रीराम जिनके दर्शन के लिये मैं व्याकुल था और किसी भी उपाय से अपने इष्टदेव श्रीराम के समीप पहुँचने में असमर्थ था वही मेरे इष्टदेव श्रीराम मुझ पर अनुग्रह करने के लिये अपनी प्रिया सीता के वियोग में, जिनका कभी योग और वियोग होता ही नहीं है, जो शब्द और अर्थ, जल और तरंग, सूर्य और सूर्य की प्रभा एवं चन्द्रमा और चन्द्रमा की चंद्रिका के समान अभिन्न हैं वह अपनी प्रिया के वियोग का अभिनय करते हुए नयनाभिराम श्रीराम मेरे संतप्त हृदय को आनन्द से भर देने के लिये ही मेरे सन्मुख वैदेही को ढूंढ़ते हुए प्रगट हो गए हैं :—

चौ०—शम्भु समय तेहि रामहिं देखा, उपजा हिय अति हर्ष विशेषा।
भरि लोचन छवि सिंधु निहारी, कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी।।

भगवान शंकर ने उस समय श्रीराम को देखा और श्रीराम के दर्शन से आसुतोष के हृदय में विशेष प्रकार का अत्यन्त हर्ष उत्पन्न हुआ। भर नेत्र छवि समुद्र को देखा। उचित समय न जानकर परिचय नहीं किया।

यहाँ इस चौपाई में भर नेत्र छवि समुद्र को देखने का और विशेष प्रकार का अत्यन्त हर्ष उत्पन्न होने का विशेष भाव है। विशेष भाव यह है कि कोई भी उस ब्रह्म को इन चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता है। ब्रह्म को देखने के लिये दिव्य दृष्टि का होना बहुत अनिवार्य है क्योंकि दिव्य दृष्टि के बिना कोई भी उस परमात्मा को नहीं देख सकता है। जैसा कि स्वयं भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि अर्जुन तुम अपनी आँखों से मुझे नहीं देख सकते हो इसलिये मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूँ जिसके द्वारा तुम देखो। दिव्य दृष्टि का अभिप्राय है काम, क्रोध, लोभादि समस्त विकारों से इन आँखों का रहित होकर भगवान की प्रेमाभक्ति से युक्त हो जाना। जब यह हमारी आँखें भगवान की प्रेमाभक्ति से युक्त हो जाती हैं तभी

यह आँखें भगवान को देख सकती हैं और फिर तो चाहे भगवान किसी भी प्रकार की लीला कर रहे हों अथवा वाह्य रूप से किसी भी प्रकार का अभिनय कर रहे हों आखें सदा एक रस में स्थित उस आनन्दमय ब्रह्म को पहचानने में कभी धोखा नहीं खाती हैं, जैसा कि यहाँ स्वयं भगवान श्रीराम की वाह्य स्थिति है। वाह्य रूप से तो श्रीराम अपनी प्रिया जानकी के विरह में अत्यन्त व्याकुल हैं परन्तु भगवान शंकर की दिव्य दृष्टि के ऊपर भगवान श्रीराम के वाह्य अभिनय का कोई प्रभाव नहीं पड़ा अपितु भगवान शंकर के नेत्र उस आनन्दस्वरूप ब्रह्म को देख कर आनन्द से भर उठे।

अति विशेष हर्ष का भाव यह है कि विशेष हर्ष का अर्थ है वास्तविक सुख जिसे हम ब्रह्मानन्द भी कहते हैं। ब्रह्मानन्द को वास्तविक सुख कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में स्त्री पुत्रादिकों से जो सुख हमें प्राप्त होता है वह वास्तविक अर्थात् सत्य नहीं है। आत्मदर्शी पुरुषों ने संसार के भोगों से उत्पन्न सुख को भी दुख ही माना है क्योंकि जो सत्य नहीं है वह कभी सुखद नहीं हो सकता है और सत्य वही है जो किसी दूसरे के द्वारा बाधित न हो परन्तु संसार के भोगों से उत्पन्न सुख-दुख दोनों ही एक दूसरे से बाधित हो जाते हैं, जैसे किसी को पुत्र न होने का दुख है एवं उस दुख से वह अत्यन्त दुखी है परन्तु कुछ समय के बाद उसके घर में पुत्र हुआ और पुत्र होने के सुख से वह सुखी हो गया। पुत्र होने के सुख से अब उसका पुत्र न होने का दुख बाधित हो गया। इसका अभिप्राय यह है कि उसका पुत्र न होने का दुख सत्य नहीं था। यदि सत्य होता तो पुत्र होने के सुख से वह दुख नष्ट नहीं होता अब कुछ समय के बाद, उसका वह पुत्र मर गया और पुत्र मर जाने के दुख से वह पुत्र शोक में अत्यन्त दुखी हो गया अब पुनः पुत्र मर जाने से पुत्र होने का सुख नष्ट हो गया। इस प्रकार सुख के द्वारा दुख और दुख के द्वारा सुख परस्पर एक दूसरे के द्वारा नष्ट हो गये अर्थात् बाधित हो गये क्योंकि वह सत्य नहीं था। इसलिये हम उसको वास्तविक सुख नहीं कह सकते हैं। वास्तविक सुख तो आनन्द स्वरूप ब्रह्म के दर्शन से ही प्राप्त होता है और वह सत्य एवं सनातन होता है जिसे संसार का कोई भी दुख बाधित नहीं कर सकता है। यह है विशेष हर्ष। परन्तु यहाँ भगवान शंकर को सीता के विरह में विरहातुर अपने इष्टदेव श्रीराम को देखकर अति विशेष हर्ष प्राप्त हुआ। विशेष हर्ष आत्मदर्शी पुरुषों को प्राप्त होता है जो कि अव्यक्त रूप से अखिल जगत में व्याप्त उस निर्गुण निराकार ब्रह्म को ब्रह्म ज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र एवं सब में देखते हैं। परन्तु अति विशेष हर्ष तो भक्तों को ही प्राप्त होता है जोकि नित्य लीलामय सगुण विग्रह धारी अपने एक-एक अंग पर करोड़ों-करोड़ों काम को लज्जित करने वाले विश्व विमोहन नयनाभिराम श्रीराम को देखते हैं। इसके लिये इस प्रसंग को देखें : बालकाण्ड दोहा २१५

चौ——मूरति मधुर मनोहर देखी, भयउ विदेह विदेह विशेषी।

मधुर एवं मनोहर मूर्ति को देखकर विदेह से भी विशेष प्रकार के विदेह हो गए अर्थात आत्म दर्शी जनक ब्रम्हानन्द (विशेष हर्ष) प्राप्ति से जो देह के धर्म से ऊपर उठकर सदा ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते थे अब उन्हें रस-स्वरूप नयनाभिराम श्रीराम को देखकर ब्रम्हानन्द भी नीरस लगने लगा।

दो०—प्रेम मगन मन जानि नृप, करि विवेक धरि धीर।
बोले मुनिपद नाइ सिर, गद्गद् गिरा गंभीर॥ (१।२१५)

इत्यादि प्रसंग देखने योग्य हैं।

यहाँ भक्तराज भगवान शंकर ने भी उस आन्नद स्वरूप ब्रम्ह को जिन्होंने कि केवल भक्तों को ही सुख देने के लिये लीलमय शरीर धारण कर रखा है, ऐसे रस स्वरूप श्रीराम को अपनी प्रिया के विरह में अत्यन्त माधुर्यमय लीला करते हुए देखा। इसलिये अति विशेष हर्ष को प्रगट नहीं करना चाहते थे इसलिये काम को नष्ट करने वाले भगवान 'जय हो सच्चिदानन्द जग पावन' ऐसा कह कर चल दिये परन्तु सगुण ब्रह्म दर्शन का जो सुख है वह कैसे छिपाया जा सकता है। साथ में चल रही सती को अनधिकारी समझ कर भगवान शंकर उस परमानन्द को सती से नहीं बताना चाहते थे फिर भी अत्यधिक प्रेम से विह्वल हो जाने के कारण आसुतोष से नहीं रहा गया। मैं कौन हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, मुझे किस दिशा एवं किस मार्ग से जाना है सब कुछ भूल गए।

जहाँ एक ओर विश्व विमोहन श्रीराम को देखकर भगवान शंकर परमानन्द में सब कुछ भूल गए हैं वहीं दूसरी ओर सती पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि सती ने अगस्त के आश्रम में मन लगाकर राम कथा को नहीं सुनी थीं और न तो भगवान शंकर की भाँति वाह्य एवं आन्तरिक जगत की समस्त सद्-असद् चेष्टाओं से विरत होकर सती का मन श्रीराम चरित्र मैं तल्लीन ही हुआ इसलिये भगवान श्रीराम का प्रत्यक्ष दर्शन होने पर भी सती को ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं हुई। अपितु इसके विपरीत सती तर्क करने लगी कि मेरे पति शंकर तो जगत वंदनीय हैं, समस्त सुर असुर ऋषि मुनि तो उन्हें प्रणाम करते हैं और ये स्वयं जगत के ईश हैं फिर इन्होंने उस राजकुमार को सच्चिदानन्द कहकर प्रणाम क्यों किया? क्या वह ब्रह्म जो व्यापक, विरजा नाम की नदी से पार, अजन्मा—जो कभी जन्म नहीं लेते, अकल जो चन्द्रमा की भाँति घटने-बड़ने की कलाओं से रहित है, अनीह-इच्छाओं से रहित अथात् पूर्ण काम, और जो अभेद है (एक दो तीन का भेद जिनमें नहीं है अपितु एक ही हैं) क्या वह शरीर धारण करके मनुष्य हो सकता है जिसको वेद भी नहीं जानता है।

दो०—ब्रह्म जो व्यापक विरव अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होहिं नर, जाहि न जानत वेद॥ (१।५०)

परन्तु दूसरी ओर मेरे पति तो सर्वज्ञ हैं। क्या उनकी बात कभी मिथ्या हो सकती है। इस प्रकार द्वन्द में फँसी हुई सती तर्क की कसौटी पर कस कर ब्रह्म को पहचानने में असफल हो गई। तर्क तो सदैव जीव को ईश्वर से विमुख कर जीव के हृदय में संदेह पैदा कर देता है। अतः उक्त नियम के अनुसार सती के हृदय में भारी संदेह पैदा हो गया। बहुत प्रयास करने पर भी सती के अशान्त हृदय को शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। अज्ञानान्धकार में डूबी हुई सती चुपचाप भगवान शंकर के साथ चली जा रही हैं। अपने मन की व्यथा यद्यपि सती ने भगवान शंकर से नहीं बतायी परन्तु सर्व अन्तर्यामी शिव सब कुछ जान गए और बोले कि सती तुमने अपने नारी स्वभाव वश होकर ही मेरे इष्ट देव श्रीराम पर तर्क किया और अन्त में तुम्हारे हृदय में सन्देह हो गया है जिससे कि तुम इस समय बहुत व्याकुल हो रही हो। फिर

भी तुमने अपना संदेह अभी तक मुझसे छिपा रखा है। इसका परिणाम तुम्हारे लिये अच्छा नहीं होगा।

जब कि ऐसा नियम है कि जब किसी विषय पर संदेह हो जाय और वह अपना संदेह दूर करने में अपने को असमर्थ समझे, तो तत्काल किसी ज्ञानवान सत्पुरुष के समक्ष निरभिमान होकर अपना संदेह प्रगट करे जैसा कि किशकिन्धा कान्ड के आरम्भ में ऋष्यमूक पर्वत पर अपने मंत्रियों सहित बैठे हुए सुग्रीव ने जब श्रीराम और लक्ष्मण को देखा तो संदेन्ह में पड़ गया। उस समय सुग्रीव ने मन में विचार किया कि हो सकता है कि मेरी आँखें जिनमें अनेकों प्रकार के विकार भरे हुए हैं वे आँखें इन दोनों तेजोमय पुरुष को पहचानने में भूल कर रही हों किन्तु मेरे समीप ही परम सन्त श्री हनुमान जी बैठे हुए हैं जिनकी आँखें परम शुद्ध हैं एवम् भगवान की प्रेमा-भक्ति से युक्त हैं, उनसे कहूँ कि हनुमान जी आप जाइये और अपनी आँखों से इन दोनों पुरुष सिंहों को पहचान कर मुझे बताइये कि ये दोनों बालि द्वारा भेजे हुए मुझे मारने के लिये आ रहे हैं या मुझ पर अनुग्रह करने के लिये आ रहे हैं। इस प्रकार सुग्रीव के द्वारा भेजे हुए श्री हनुमान जी ने ब्रह्म श्रीराम को पहचान कर अपने जीवन को तो कृतार्थ किया ही साथ ही अपने कंधों पर बिठाकर श्रीराम लक्ष्मण को लाकर सुग्रीव को दर्शन कराया व मित्र के रूप में भगवत् प्राप्ति कराकर सुग्रीव के जीवन के भी सनाथ बना दिया।

इस प्रकार के और भी अनेक उदाहरण हैं जिनसे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि संदेह होने पर जब स्वयं की अपनी बुद्धि किसी द्वन्द में फँसकर भ्रमित हो जाय और सद्-असद् के निराकरण करने में असमर्थ हो जाय तब शीघ्रातिशीघ्र किसी ज्ञानवान सत्पुरुष के सामने अपने को समर्पण कर देना चाहिए। ऐसा करने से निश्चय ही अपना खोया हुआ आत्म-ज्ञान पुनः प्रगट हो जाता है। परन्तु उपर्युक्त सिद्धान्त के विपरीत आचरण करने पर जैसा कि यहाँ सती ने किया है निश्चय ही संदेह के गर्त में डूब कर जीव जन्म मृत्यु के चक्कर में फँस जाता है।

अस्तु भगवान शंकर ने कहा कि सती इस प्रकार तुमको मेरे इष्ट देव पर संदेह नहीं करना चाहिये। अभी-अभी जिनकी कथा महर्षि अगस्त ने मुझे सुनाया और ऋषि के याचना करने पर जिनकी भक्ति मैंने उन्हें दिया वही मेरे इष्ट देव रघुवीर हैं जिनकी सेवा बड़े-बड़े धीर मुनि लोग किया करते हैं और बड़े-बड़े अमल आत्मा मुनि एवम् सिद्ध योगी जन विमल मन से जिनका ध्यान किया करते हैं, वेद, पुराण, शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनका यशो गान किया करते हैं वहीं राम जो अन्तरात्मा के रूप में चर अचर में रमण किया करते हैं, व्यापक जो अग्नि की भाँति अखिल जगत में व्याप्त हैं, ब्रह्म जो अव्यय जिनमें कभी व्यय नहीं होता, जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के स्वामी एवम् माया के पति हैं, वही अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये माया को अपने वश में करके स्वेच्छा से लीला मय शरीर धारण करके जगत को पवित्र करने के लिये इस वन में विचर रहे हैं। इसलिये तुमको मेरे इष्ट देव श्रीराम पर सन्देह नहीं करना चाहिए। परन्तु भगवान शंकर के उपदेश से सती का सन्देह दूर नहीं हुआ। क्योंकि सती के मन में जिज्ञासा नहीं थी और ऐसा नियम है कि जब तक कोई

जिज्ञासु बनकर नहीं आवे तब तक उसको उपदेश नहीं देना चाहिये अन्यथा उपदेश व्यर्थ हो जायगा। या तो कोई स्वयं जिज्ञासु बन कर आपकी शरण में आवे तब आप उसे उपदेश दें या तो यदि कोई आपका प्रिय है और आप उसका कल्याण करना चाहते हैं परन्तु उसके मन में जिज्ञासा नहीं है ऐसी परिस्थिति में आप अपनी वाक्‌चातुरी से उसके मन में जिज्ञासा पैदा करें और वह जिज्ञासु बनकर अपने को आपके समक्ष समर्पण कर दे तब आप उसे उपदेश दें। तभी उसका कल्याण होगा। जैसा कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन के साथ किया है। अर्जुन ने कुरू-क्षेत्र में युद्ध के लिये आए हुए उन उपस्थित वीरों को देख कर स्वयं यह निश्चय कर लिया कि इन गुरुजनों के साथ युद्ध करना अधर्म है और युद्ध न करना ही एक मात्र धर्म है। साथ ही अपना निश्चय अर्जुन ने अपने प्रिय मित्र नन्दनन्दन श्री कृष्ण चन्द्र को भी सुना दिया। परन्तु भगवान कृष्ण तो यह देख रहें हैं कि अर्जुन का निश्चय धर्म विरुद्ध है और यह भी देख रहे हैं कि अर्जुन के मन में मुझसे जानने की जिज्ञासा भी नहीं है। तब भगवान कृष्णा ने अपनी वाक्‌चातुरी से अर्जुन का निश्चय भंग कर दिया। अर्जुन पुनः अपने निश्चय तक पहुँचने के लिये बहुत प्रयास किया किन्तु उसका प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुआ और अन्त में अर्जुन जिज्ञासु बनकर भगवान कृष्ण के श्री चरणों में आत्म समर्पण कर दिया। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीतामृत का पान कराया। जिस अमृत को पीकर अर्जुन मृत्यु संसार सागर से पार उतर गया।

परन्तु यहाँ सती के मन में न तो जिज्ञासा थी और न तो भगवान शंकर ने सती के मन में जिज्ञासा पैदा करने का प्रयास ही किया। अपितु बिना जिज्ञासा के ही भगवान शंकर ने उपदेश दिया। इसलिये सती पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तब भगवान शंकर ने कहा कि सती यदि तुम्हारे मन में बहुत ही संदेह है और मेरे कहने से भी तुम्हारा सन्देह दूर नहीं हुआ तो क्यों नहीं तुम जाकर परीक्षा लेती हो। इसलिये तुम जाओ, परीक्षा लेकर देखो और तब तक मैं इस बटवृक्ष की छाया में बैठा रहूँगा, जब तक तुम लौट कर आओगी ?

चौ०—तब लगि बैठ अहउंबट छाहीं, जब लग तुम अइहहु मोहि पाहीं।

यहाँ बटवृक्ष की छाया में बैठने का अभिप्राय है विश्वास की छाया में बैठना। क्योंकि मानस में बटवृक्ष का अर्थ स्वाभाविक बटवृक्ष भी है और विश्वास भी जैसा कि बालकाण्ड दोहा नं० २ के ऊपर की अधाली में लिखा है :

चौ०—वट विश्वास अचल निज धरमा, तीरथराज समाज सुकरमा।

सती तर्क के द्वारा भगवान को जानना चाहती थी जब कि तर्क एक नाशवान है और किसी भी नाशवान पदार्थ के द्वारा अविनाशी ब्रह्म नहीं प्राप्त हो सकता है। यह एक सिद्धान्त की बात है कि स्वजातीय द्रव्य ही स्वजातीय द्रव्य को ग्रहण कर सकता है जैसे चुम्बक लोहे को ही आकर्षित कर सकता है किसी अन्य धातु को नहीं। स्वयं भगवान कृष्ण ने भी कहा है कि इस लोक में दो प्रकार के पुरूष हैं क्षर और अक्षर। क्षर से क्षरणशील-परिवर्तन शील-देह समुदाय और अक्षर से अपरिवर्तनशील नित्य सनातन आत्मा। श्रीकृष्ण के कथनानुसार कि क्षर से मैं अतीत हूँ अर्थात जड़ शरीर मुझे नहीं प्राप्त कर सकता है परन्तु चेतन आत्मा मुझे प्राप्त कर सकती है क्योंकि वह मेरा स्वजातीय एवम् अंश है।

इस उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार तर्क से भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि तर्क नाशवान एवम् अनित्य है परन्तु ईश्वर नित्य सनातन है साथ ही तर्क संदेह का जन्म दाता है। सती तर्क के द्वारा ही भगवान को जानना चाहती थी इसलिये नाशवान अनित्य तर्क के द्वारा नित्य सनातन ब्रह्म को तो नहीं जान पाई अपितु उलटे ही सन्देह के गर्त में गिर पड़ी। यहाँ भगवान शंकर ने पुनः एक बार सावधान करते हुए सती से कहा कि सती अभी भी सावधान हो जाओ और यदि ईश्वर को जानना चाहती हो तो मेरी तरह से तुम भी विश्वास रूपी वट की छाया में आओ। ईश्वर तो विश्वास के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि ईश्वर का निवास विश्वास की छाया में ही है। इसलिये श्रीरामचरित मानस में सभी स्थलों में भगवान श्रीराम ने वट की छाया में ही निवास किया है।

यहाँ इस प्रसंग से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि इस संसार के सभी कार्यों में तो तर्क युक्त बुद्धि से कार्य लेना चाहिये परन्तु गुरू और ईश्वर के साथ तर्क और बुद्धि दोनों से दूर रहकर प्रेम और विश्वास से कार्य लेना चाहिए किन्तु सती ने तो परीक्षा लेने का ही निश्चय कर लिया है। ऐसा जान कर भगवान शंकर ने सती से कहा। जिस प्रकार से तुम्हारा भारी मोह और भ्रम दूर हो विवेक से युक्त वह उपाय करना, कहीं विवेक खो मत बैठना।

चौ०—जैसे जाय मोह भ्रम भारी, करेहु सो यतन विवेक विचारी।

इस अर्धाली में यत्न का अर्थ कर्म और विवेक का अर्थ ज्ञान है।

इसका अभिप्राय यह है कि ज्ञान से युक्त कर्म करने पर ही आध्यात्मिक साधना में सफलता मिलती है। ज्ञान के बिना कर्म और कर्म के बिना ज्ञान दोनों ही निश्फल हो जाता है। कर्म से जीव मृत्यु को पार कर लेता है और ज्ञान से अमृत रूपी मुक्ति को प्राप्त कर जीव सनाथ हो जाता है। यहाँ भगवान शंकर का संकेत सती के लिये ज्ञान से युक्त कर्म करने का है क्योंकि ज्ञानविहीन कर्म जीव को अन्धकार में ले जाता है। परन्तु सती ने तो भगवान शंकर की आज्ञा के विरूद्ध कार्य किया। सती शंकर से परीक्षा की अनुमति लेकर चलीं। इधर भगवान शंकर पुनः अपने मन को अन्तर्मुख कर भगवन्नाम स्मरण करने लगे। उधर सती पहुँच जाती हैं, उस मार्ग पर जिस मार्ग पर कुछ ही क्षणों के बाद अपनी प्रिय सीता को ढूंढ़ते हुए एवं विलाप करते हुए श्रीराम आयेंगे। सती मन में विचार करती हैं कि मैं किस भाँति से परीक्षा लूं और अन्त में यह निश्चय करती हैं कि मैं क्यों न सीता का रूप बना लूं और यहीं मार्ग में खड़ी हो जाऊँ, अभी-अभी कुछ ही क्षणों के बाद जब श्रीराम यहाँ आयेंगे तब वे मुझे अपनी प्रिया सीता समझ कर संभवतः हा प्रिये! हा प्रिये!! कहते हुए दौड़कर मेरे समीप आ जायेंगे। तब मैं अन्तर्ध्यान हो जाऊँगी। बस परीक्षा हो जायगी इसे ही परीक्षा लेने का सबसे उत्तम उपाय समझ कर सती ने ऐसा ही किया।

दो०—पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नर भूप ॥ (१५२)

इतने में ही अपनी प्रिया सीता को ढूंढ़ते हुए लक्ष्मण के साथ श्रीराम वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ सती सीता के रूप में खड़ी हैं। सर्व प्रथम लक्ष्मण ने ही देखा कि यह तो जगदम्बा

सती हैं। क्यों सीता बनी हैं? परन्तु उपयुक्त अवसर न समझ कर लक्ष्मण ने कुछ कहना उचित न समझ कर चुप ही रहे। श्रीराम यद्यपि अपनी प्रिया के विरह में यहाँ विरही अति कामी के सदृश्य अत्यन्त दीन दशा को प्राप्त हो रहे हैं। हनुमन नाटक के अनुसार यहाँ श्रीराम अत्यधिक व्याकुल हो गए हैं। लक्ष्मण को भी भूल गए हैं। अपने को भी भूल गए हैं कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, क्या कर रहा हूँ। लक्ष्मण के स्मरण दिलाने पर कि मैं आपका दास लक्ष्मण हूँ। आप मेरे बड़े भ्राता रघुकूल भूषण श्रीराम हैं। हम दोनों भाई विदेह राज तनया जानकी को ढूँढ़ रहे हैं जिन्हें किसी राक्षस ने हरण कर लिया है। तब श्रीराम को स्मरण हो जाता है और विलाप करने लगते हैं—हा-हा, प्रिये जानकी !

जहाँ एक ओर श्रीराम इस दशा को प्राप्त हैं वहीं दूसरी ओर सती कपट का आश्रय लेकर सीता बनी खड़ी हैं। परन्तु श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं। अखिल विश्व की आत्मा हैं। वाह्य रूप से यहाँ विरही अतिकामी के सदृश्य रोते हुए भी वस्तुतः तो श्रीराम आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं। दुख-सुख, मान-अपमान, योग-वियोग इस समस्त माया के प्रपंचों से नित्य मुक्त सर्व अन्तर्यामी हैं। अस्तु सर्व अन्तर्यामी होने के कारण यह तो जान ही रहे हैं कि यह सती हैं इसलिये अपनी दुरत्या (जिसे तैर कर कोई पार न कर सके) माया के बल की प्रशंसा करते हुए जिसने सती को भी मोह में डाल दिया, यहाँ श्रीराम को अपनी माया के बल पर संतोष हुआ क्योंकि रावण को मोह में डालने के लिये भी महा विरही अति कामी के सदृश्य अपनी प्रिया सीता के विरह में व्याकुल होकर श्रीराम विलाप करते हुए एक वन से दूसरे वन में घूम रहे थे परन्तु श्रीराम ने जब देखा कि मेरी इस् मायामय लीला से सती जैसी देवी को भी मोह हो गया तो रावण को मोह हो जाना स्वाभाविक ही है। अतः रावण ने अब मुझे निश्चय ही साधारण मनुष्य मान लिया होगा। इसलिये अपनी मायाबल की प्रशंसा करते हुए प्रभु श्रीराम ने दोनों हाथ जोड़कर पिता के समेत अपना नाम लिया कि मैं अयोध्या नरेश महाराज श्री दशरथ का पुत्र राम हूँ। ऐसा कह कर प्रणाम किया और पुनः श्रीराम ने सती से पूछा कि भगवान वृषभकेतु कहाँ हैं? आप अकेली इस घोर जंगल में क्यों फिर रही हैं?

चौ०—जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ वृष केतू। विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
दो०—रामबचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोच।
सती समेत महेश पहिं, चली हृदय बड़ सोच॥ (१५३)

श्रीराम का गूढ़ वचन सुनकर सती को बड़ा संकोच हुआ, भय से युक्त सती महेश के पास चलीं। हृदय में अधिक चिंता हो जाने के कारण व्याकुल भी हैं।

यहाँ श्रीराम का गूढ़ एवम् मृदु बचन का अर्थ सत्य एवम् प्रिय है। सत्य और प्रिय तो केवल ईश्वर ही बोल सकते हैं। उक्त अर्धाली में श्रीराम ने भगवान शंकर को वृषभ केतु कह कर सम्बोधित किया। वृषभ का अर्थ है बैल और केतु का अर्थ है पताका, भारतीय दर्शन में बैल धर्म का प्रतीक माना जाता है। इसलिये वृषभ केतु का अर्थ है 'धर्म के प्रतीक' बैल के

चिह्न से चिह्नित ध्वजा को धारण करने वाले भगवान शंकर।' यहाँ श्रीराम के द्वारा वृषभ केतु सम्बोधन करने का भाव है कि सती तुम किसी साधारण पुरुष की पत्नी नहीं हो। तुम तो धर्म की ध्वजा धारण करने वाले वृषभ केतु की पत्नी हो और इस तरह घोर जंगल में परायी नारी का रूप बना कर फिर रही हो। इसको भगवान शंकर सम्भवतः क्षमा नहीं करेंगे। यही श्रीराम के सत्य और प्रिय वचन हैं। इसे सुनकर सती बहुत ही लज्जित हुईं। साथ ही यह मन में विचार करती हुई चलीं कि मेरे पति शंकर ने मुझे पहले ही समझाया था परन्तु मैंने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया और जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान नष्ट हो जाता है उस राम पर मैंने अपना अज्ञान आरोपित किया। विशेषतः सती के हृदय में बार-बार यह प्रश्न उठ रहा है कि अब मैं जाकर अपने पति को क्या उत्तर दूँगी क्योंकि मुझसे भारी भूल हो गई है। चलते समय मेरे पति ने मुझे सावधान किया था कि विवेक से काम लेना, फिर भी मैं भूल कर ही बैठी कि परायी नारी सीता का रूप बनाकर मैंने शील का त्याग कर दिया। इस प्रकार जब सती अपनी भूलों पर विचार करती हैं तब सती का हृदय दुख से संतप्त हो उठता है :

चौ०—जाय उतर अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥

इस प्रकार सती को दुखी देखकर श्रीराम ने अपना प्रभाव प्रकट किया। अब मार्ग में चल रही सती श्रीराम का कौतुक देखती हैं। अब तक जो सती समझ रही थी कि श्रीराम अपनी पत्नी सीता के वियोग में दुखी हैं सो अब देखती हैं कि अपने से आगे लक्ष्मण और सीता के सहित श्रीराम जा रहे हैं। यह देख कर सती को बहुत आश्चर्य हुआ कि यह क्या अभी तो श्रीराम अपनी पत्नी सीता के वियोग में व्याकुल थे और अब सीता कहाँ से आ गईं। इस प्रकार सती ने आश्चर्य चकित होकर पीछे मुड़कर देखा तो पीछे भी वही लक्ष्मण और सीता के साथ श्रीराम का सुन्दर वेष में दर्शन हुआ। अब तो जिधर देखती हैं उधर ही सीता के सहित प्रभु श्रीराम सुन्दर आसन पर बैठे हुए हैं और बड़े-बड़े सिद्ध और ज्ञानी मुनि सेवा कर रहे हैं, और साथ ही अनेकों शिव, अनेकों ब्रह्मा, अनेकों विष्णु एक से बढ़कर एक जिनका प्रभाव भी असीम है ऐसे ब्रह्मादि देवता प्रभु के चरणों की वन्दना कर रहे हैं और सेवा कर रहे हैं। यही देवता अनेक रूपों में भी हैं। साथ ही इनकी शक्तियाँ भी अनेकों एवम् बहुत से रूपों में हैं जैसे-अनेकों सती, अनेकों ब्रह्माणी, अनेकों लक्ष्मी जिन-जिन रूप में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, एवम् सभी देवता गण हैं उन्हीं उन्हीं रूपों में उनकी शक्तियाँ भी हैं।

इस प्रकार इस संसार के समस्त देवता उनकी शक्तियाँ एवम् चर अचर जीवों को सती भिन्न-भिन्न रूपों में देख रही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सहित वही इन्द्रादिक देवता अनेकों भेष धारण किये हुए प्रभु श्रीराम की पूजा एवम् सेवा कर रहे हैं परन्तु श्रीराम सीता और लक्ष्मण के सहित अनेक होते हुए भी वही राम वही लक्ष्मण वही सीता उनके भेष में कोई अन्तर नहीं है अर्थात अनेक होते हुए लक्ष्मण सीता के साथ श्रीराम एक ही हैं। यही अभेद का अर्थ है।

इस प्रकार इन अलौकिक लीलाओं को देखकर जो इससे पूर्व सती ने कभी नहीं देखी थी, सती का हृदय कांप उठा एवम् शरीर की सुध-बुध भूल गई और अपनी आखें बन्द कर

वहीं मार्ग में बैठ गईं। जब कुछ क्षण के बाद पुनः सती ने आखें खोल कर देखीं तो सब कुछ अदृष्य हो चुका था। यही श्रीराम की प्रभुता थी जो अब तक सती देख रही थीं। इसी को सती पार्वती के रूप में भगवान शिव से कही हैं :

चौ०—मैं वन दीख राम प्रभुतायी। अतिसय विकल न तुम्हहि सुनाई॥

अब यहाँ दो प्रश्नों पर विचार करना है। प्रथम तो यह कि इस प्रसंग में 'तेहि अवसर भंजन महिभारा, हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा' इससे पूर्व की कोई लीला का वर्णन नहीं मिलता है और अंत में 'बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी, कछु न दीख तंह दक्ष कुमारी' इससे आगे भी लीला का कोई वर्णन नहीं मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय रामावतार का समय नहीं था। इसमें तो भगवान शंकर की तन्मयता ही प्रधान कारण था। महर्षि अगस्त के मुख से कथा सुनने के उपरान्त अपने आश्रम की ओर चल रहे भगवान शंकर जब दण्डकारण्य के समीप पहुँचे तो उनकी तन्मयता इतनी अधिक बढ़ गई कि उस समय भगवान शंकर के सम्मुख लक्ष्मण के साथ सीता वियोगी श्रीराम का प्रादुर्भाव हो गया और भगवान आसुतोष ने भर नेत्र अपने इष्टदेव का दर्शन किया।

जबकि श्रीरामचरित मानस के कुछ अन्य स्थलों में भी कुछ अपने निजी भक्तों को इस तरह की अलौकिक लीलाओं का दर्शन कराया है। परन्तु उन स्थलों में इस प्रकार की अलौकिक लीलाओं के आरम्भ होने से पूर्व भी लीला का क्रम चल रहा था और बाद में भी पूर्व की लीला जहाँ से इस अलौकिक लीला के आरम्भ होने के कारण रुकी हुई थी पुनः वहीं से पूर्व-वत लीला चल पड़ी है। जैसे बालकाण्ड में अपनी माता कौशल्या के सन्मुख जब बालक श्रीराम ने अपनी अलौकिक लीला प्रगट की तो उससे पूर्व भी बाल लीला चल रही थी और बाद में भी बाललीला पूर्ववत् चलती रही। दूसरा उदाहरण—जब उत्तर काण्ड में कागभुसुन्डि को बालक श्रीराम ने मोह से ग्रसित एवं भ्रम से चकित देखा तब कागभुसुन्डि के समक्ष अपनी अलौकिक लीलाओं को प्रगट किया परन्तु उससे पूर्व बाल लीला चल रही थी जैसे :

दो०—आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजन रूदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ (७।७७ क)

और बाद में भी कागभुसुन्डि के मोह दूर हो जाने पर बालक श्रीराम पूर्ववत लीला करने लगे।

दो०—सोइ लरिकाई मो सन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउं, मन न लहे विश्राम॥ (७।८२ ख)

इन उक्त दोनों प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि सती के समय में रामावतार का समय नहीं था क्योंकि वहाँ आगे पीछे लीला का कोई वर्णन नहीं मिलता है। अब दूसरा प्रश्न यह कि सती के समक्ष भगवान ने अपनी अलौकिक लीलाओं को क्यों प्रगट किया? समाधान-सती को सन्देह था कि :

दो०—ब्रह्म जो व्यापक, विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥ (१।५०)

इसलिये परीक्षा लेने के लिये आई थीं और भगवान तो परम दयालु हैं। यदि कोई उनकी परीक्षा लेना चाहता है तो भगवान सदैव परीक्षा देने के लिये तैयार रहते हैं। यहाँ सती भगवान श्रीराम की परीक्षा लेने आई थीं। इसलिये श्रीराम ने अपनी अलौकिक लीलाओं को प्रगट कर सती के समक्ष परीक्षा दिया जिससे कि सती का संदेह दूर हो गया और यह निश्चय हो गया कि यह सनातन ब्रह्म हैं। इसलिये मन से बार-बार श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया और जहाँ गिरीश भगवान शंकर बैठे थे वहाँ के लिये चल पड़ीं।

चौ०—पुनि पुनि नाइ राम पद शीसा, चलीं तहाँ जँह रहे गिरीसा।
दो०—गईं समीप महेश तव, हँसि पूछी कुसलात।
लीन्ह परीक्षा कवन विधि, सत्य कहहु सब बात॥ (१।५५)

जब परीक्षा लेकर सती भगवान शंकर के समीप पहुँची तब भगवान शंकर ने हँसकर पूछा कि सती सत्य कहो किस प्रकार से तुमने परीक्षा लिया। यहाँ भगवान शंकर ने सत्य बोलने पर विशेष जोर दिया है। इसका अभिप्राय यह है कि मानव जीवन की दो ही आधार शिला होती हैं जिस पर यह मानव जीवन रूपी सुन्दर भवन का निर्माण हुआ है एवम् टिका हुआ है। वे हैं सत्य और शील। जैसा कि भगवान श्रीराम ने लंकाकाण्ड युद्ध के प्रसंग में विभीषण को उपदेश देते हुए धैर्य रथ का वर्णन करते हुए कहा है :

चौ०—सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होय सो स्पन्दन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥

जैसे किसी रथी का ध्वजा एवम् पताका के कट जाने पर रथी का पराजय माना जाता है ठीक उसी प्रकार सत्य और शील के बिना मानव जीवन समाप्त हो जाता है। जैसे किसी भवन की आधार शिला के हिल जाने पर भवन धराशायी हो जाता है वैसे ही सत्य और शील के बिना मानव जीवन धराशायी हो जाता है। यहाँ सती ने अपने पति भगवान शंकर के निर्देश के विरुद्ध आचरण किया है और साथ ही परायी नारी सीता का रूप बना कर घोर जंगल में श्रीराम की परीक्षा लेकर शील का त्याग कर दिया है।

अतः भगवान शंकर ने कहा सती! सत्य बोलना, शील तो तुम्हारा समाप्त हो चुका है अब केवल सत्य रह गया है उसको मत छोड़ना परन्तु सती ने सत्य का भी त्याग कर दिया और असत्य बोल गई कि मैंने कोई परीक्षा नहीं लिया जैसे आपने प्रणाम किया था उसी प्रकार मैं भी प्रणाम करके लौट आई।

यह है नारी स्वभाव। पुरुष होता है विचार प्रधान। इसलिये कोई भी कार्य करने से पहले विचार करता है परन्तु स्त्रियाँ होती हैं भावना प्रधान। बिना विचारे जो कुछ करना चाहती हैं कर गुजरती हैं। सती ने भी यहाँ ऐसा ही किया इसलिये सती की बातों पर सन्देह होना स्वाभाविक ही था।

चौ०—तव शंकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥

तब शंकर ने ध्यान के द्वारा देखा और सती ने जो कुछ किया था सब जान लिया। परन्तु सती ने ऐसा किया क्यों? किस शक्ति से प्रेरित होकर यह सब कुछ किया वह शक्ति

थी भगवान राम की माया जिससे प्रेरित होकर सती असत्य बोलीं और उस माया के पीछे भी श्रीराम की इच्छा कार्य कर रही थी। ऐसा जान कर आसुतोष ने श्रीराम एवम् श्रीराम की माया को प्रणाम किया। अब भगवान शंकर के हृदय में भारी विषाद उत्पन्न हुआ क्योंकि सती ने सीता का रूप बना लिया है। अब यदि मैं सती से प्रेम करता हूँ तो भक्ति का पथ मिट जाता है और बहुत बड़ी अनीति होती है :

चौ०—सती कीन्ह सीता कर भेषा। शिव उर भयउ विषाद विशेषा।
जो अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथ होइ अनीती॥

अस्तु मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि सत्य और शील ये जीवन के आधार हैं। इनके बिना जीवन नहीं रह सकता है। सती ने प्रथम शील और बाद में सत्य को भी त्याग दिया। इसलिये अब सती का जीवन प्रायः समाप्त हो चुका है। जीव अपने पुण्य कर्मों के फल से ही स्वर्गादि दिव्य लोकों में वास करता है और पुण्य क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से उसका पतन हो जाता है। यहाँ सती की भी यही स्थिति है। जिस विशाल पुण्य बल से अब तक भगवान शंकर का सानिध्य प्राप्त था वह विशाल पुण्य अब नहीं रहा इसलिये भगवान शंकर ने अब सती को त्याग देने का विचार किया परन्तु :

दो०—परम प्रीति नहि जाइ तजि। किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगट न कहत महेश कछु। हृदय अधिक संताप॥ (१५६)

एक ओर सती के लिये भगवान शंकर के मन में इतनी अत्यधिक प्रीति है कि त्यागते नहीं बन रहा है और दूसरी ओर यदि पत्नी के रूप में सती से प्रेम करते हैं तो भारी पाप होता है। इस द्वन्द्व के कारण भगवान शंकर के हृदय में इतना अधिक संताप हो रहा है कि कुछ कहते नहीं बन रहा है।

चौ०—तब शंकर प्रभु पद सिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा।
यहि तन सतिहिं भेंट मोंहि नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मन मांही॥

तब शंकर ने मन से प्रभु श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया और श्रीराम का स्मरण करते ही शंकर के मन में ऐसा संकल्प उठा कि अब सती इस शरीर से मुझे नहीं प्राप्त कर सकती हैं। शिव ने ऐसी प्रतिज्ञा की अथवा शिव ने शिव संकल्प किया। शिव संकल्प का अर्थ है कभी नहीं बदलने वाला। यहाँ आशुतोष भगवान शिव ने हमें यह शिक्षा दिया कि माया इतनी प्रबला है जिसे जीव अपने बल से नहीं त्याग सकता है इसलिये इस द्वन्दात्मक जगत को जीतने के लिये श्री हरिः के द्वन्द चरण कमलों का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

चौ०—अस बिचारि शङ्कर मति धीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा।
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम बिन करइ को आना। राम भगति समरथ भगवाना॥

मन से संकल्प पूर्वक सती का त्याग कर चुकने के बाद मतिधीर शंकर रघुबीर का स्मरण करते हुए अपने भवन की ओर चल पड़े। उस समय देवताओं ने आकाशवाणी किया और कहा महेश! आपकी जय हो। आपने आज से भक्ति को दृढ़ कर दिया। हे भगवान

आप समर्थ रामभक्त हैं, आपके सिवा ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है :

१—यहाँ भगवान शंकर को मतिधीर कहा गया है।

२—भगवान शंकर ने इस महान त्याग से भक्ति को दृढ़ किया।

३—भगवान शंकर ने कठिन प्रतिज्ञा की जैसा कोई नहीं कर सकता है।

(क) मतिधीर का अर्थ है—समाधि सिद्ध पुरुष, समाधि का अर्थ है—सम है धी जिसकी और धी का अर्थ है बुद्धि।

(ख) भगवान शंकर ने इस महान त्याग से भक्ति को दृढ़ किया। वस्तुतः जीव जब तक स्त्री प्रमादिकों के मोह में बँधा हुआ है तब तक वह भक्ति पथ पर दृढ़ नहीं हो सकता है। त्याग ईश्वर प्रेम की कसौटी है। त्याग के बिना भक्ति वाह्य आडम्बर बन कर रह जाती है जिसे ईश्वर कभी पसन्द नहीं करते हैं। सम्पूर्ण वाह्य आडंबर से दूर रह कर शुद्ध निश्छल-हृदय से यदि ईश्वर की भक्ति की जाय तभी भगवान प्रसन्न होते हैं। परन्तु यह त्याग के बिना सम्भव नहीं है। त्याग से युक्त भक्ति की शिक्षा यहाँ भगवान शंकर ने अपने इस चरित्र से हमें दिया है।

(ग) महेश ने कठिन प्रतिज्ञा की है। इससे यहाँ हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि कोई भी कार्य करने के लिये जीवन में संकल्प लेना पड़ेगा क्योंकि संकल्प के बिना सिद्धि नहीं होती है। जो मनुष्य अपने संकल्प के गिर जाता है वह कभी भी जीवन में सफल नहीं हो सकता। अतः महेश की प्रतिज्ञा की चर्चा आकाशवाणी से सुनकर सती के मन में बहुत चिंता हुई और संकोच के साथ शिव से पूछने लगीं प्रभु! आप दीनदयाल एवं सत्य के धाम हैं। इसलिये कृपया मुझे बताएँ कि आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है। यद्यपि सती ने शिव की प्रतिज्ञा जानने का बहुत प्रयास किया परन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ शिव ने नहीं बताया।

दो०—सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मैं शम्भु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ ॥ (१।५७ क)
सो०—जल पय सरिस विकाय, देखहु प्रीति की रीति भलि।
विलग होय रस जाय कपट खटाई परत पुनि ॥ (१।५७ ख)

सती के बहुत पूछने पर भी जब आसुतोष ने कुछ नहीं बताया तब सती ने हृदय में अनुमान किया कि मैंने जो कपट शिव के साथ किया उसे सर्वज्ञ शिव ने जान लिया। जल और दूध का परस्पर अत्यधिक प्रेम होने के कारण जल दूध के मूल्य में ही बिकता है। यह है प्रेम की विशेषता परन्तु खटाई पड़ जाने पर दूध फट कर जल और दूध एक दूसरे से अलग हो जाता है।

यहाँ सती और शिव का प्रेम जल और दूध के समान था परन्तु सती ने शिव के साथ कपट किया जिससे जल और दूध की भाँति दोनों एक दूसरे से अलग हो गए। इस उपर्युक्त जल और दूध के प्रसंग से हमें यह शिक्षा मिलती है कि प्रेम कैसा करना चाहिए। प्रेम के जगत में त्याग अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ईश्वर प्रेम में तो त्याग की प्रधानता है ही, सांसारिक प्रेम में भी त्याग का महत्वपूर्ण स्थान है। त्याग के बिना सांसारिक प्रेम में भी स्थिरता नहीं आती है। इसकी शिक्षा हमें दूध और पानी के प्रेम से लेनी चाहिए। दूध और

पानी को परस्पर एक दूसरे के लिये कितना त्याग है यह हमें तब देखने को मिलता है जब हम दूध को आग पर चढ़ाते हैं। दूध के आग पर चढ़ते ही पानी अपने प्रियतम दूध के लिये जलने लगता है तब दूध भी अपने प्रियतम जल को बचाने के लिये उबल कर आग को बुझा देता है। यह है प्रेमी का परस्पर एक दूसरे के लिये त्याग। किन्तु ऐसा प्रेमी दूध और जल भी खटाई के पड़ने से एक दूसरे से अलग हो जाता है। ठीक उसी प्रकार से प्रेम के जगत में कपट से रहित होना परम अनिवार्य है।

अस्तु सती और शिव का प्रेम दूध और जल की भाँति था, परन्तु सती के कपट ने उसे अलग कर दिया। अब सती को यह निश्चय हो गया था कि मेरे पति शिव ने मुझे त्याग दिया। इससे सती अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। सर्वज्ञ शिव, सती को व्याकुल देख एवम् सती के मन को बहलाने के लिये बहुत सी पौराणिक कथाओं को सुनाते हुए कैलाश पहुँच जाते हैं। कैलाश पहुँच कर शिव ने विचार किया कि मैंने प्रतिज्ञा पूर्वक सती को त्याग दिया है क्योंकि सती मेरी इष्ट देवी जननी सीता का रूप धारण कर चुकी हैं इसलिये यदि मैं शारीरिक धर्म में रहकर सती से कोई भी व्यवहार करता हूँ तो बहुत बड़ा पाप होगा। अतः शंकर ने सती से कोई भी शारीरिक व्यवहार न करने की इच्छा से पद्मासन में बैठकर एवं अपने स्वरूप में स्थित होकर अखंड समाधि लगा लिया।

इस मायिक जगत में काम, क्रोध, लोभ, शोक मोहादि तभी तक हमें दुख देते हैं जब तक कि हम शरीर के धर्म में हैं। जब हम शरीर धर्म से ऊपर उठकर अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो जायेंगे तब इनका कोई अस्तित्व नहीं रह जायगा।

अब जहाँ एक ओर परम योगेश्वर शिव शुभ-अशुभ सभी संकल्प विकल्पों से ऊपर उठकर आत्मानन्द में निमग्न हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर सती की दशा इससे भिन्न है। सती अपने ही पाप कर्मों से कैलाश में बसती हुई भी अधिक सोच के कारण अत्यन्त पीड़ित हैं। सती का एक-एक दिन युग के समान बीत रहा है:

दो०—सती बसहिं कैलाश तब, अधिक सोच मन माहिं।
मर्म न कोऊ जान कछु, युग सम दिवस सिराहिं॥ (१।५८)

इस प्रकार नित्य नवीन सोच सती के मन में उत्पन्न हो रहा है और विचार करती हैं कि इस दुख के समुद्र से कब पार जा सकूँगी। मैंने जो श्रीराम को साधारण मनुष्य मान कर अपमान किया और फिर पति के वचन को भी मिथ्या समझा उसका उचित दण्ड विधाता ने मुझे दिया। हे विधाता! अब यह उचित नहीं कि शंकर से विमुख हो जाने पर भी मुझे तुम जीवित रखो। इस प्रकार सती के अनुनय विनय करने पर भी सती को असह्य पीड़ा से छुटकारा दिलाने में विधाता ने कोई सहयोग नहीं दिया। इससे यह शिक्षा मिलती है कि जीव अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुख को भोगा करता है। देव इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता हैं परन्तु अपने पाप कर्मों से मुक्ति पाने के लिये सर्वतन्त्र स्वतन्त्र जो शुभाशुभ कर्म से बाधित नहीं होते हैं ऐसे परमात्मा से प्रार्थना कर सकता है और वह परमात्मा अपने शरणागत जीव को समस्त शुभाशुभ कर्म से मुक्ति दिला सकता है। इसलिये सती अपने किये हुए पाप कर्मों से उत्पन्न पति वियोग जन्य असह्य पीड़ा

से मुक्ति पाने के लिये अब सर्वतन्त्र स्वतंत्र परब्रह्म श्रीराम से प्रार्थना करती हैं।

हे श्रीराम ! यदि आप दीन दयाल कहाते हैं, आप दुखियों का दुख दूर करते हैं ऐसा आपका यश वेद गाता है तो मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि यह मेरा शरीर शीघ्र छूट जाय। यदि मैं मन, बचन, कर्म से भगवान शिव के चरणों में अनुरक्त हूँ तो बिना कष्ट के यह मेरा शरीर छूट जाय और जहाँ भी मेरा जन्म हो पुनः भगवान शंकर को ही पति के रूप में प्राप्त करूँ।

चौ०—कहि न जाय कछु हृदय गलानी, मन मँह रामहि सुमिर सयानी।
जो प्रभु दीन दयाल कहावा, आरति हरन वेद जस गावा।
तो मैं विनय करौं कर जोरी, छूटइ बेगि देह यह मोरी।
जो मोरे शिव चरन सनेहू, मन क्रम वचन सत्यव्रत एहू।

दो०—तो सवदर्शी सुनिय प्रभु, करहु सो बेगि उपाय।
होइ मरन जेहि बिनहिं श्रम, दुसह विपत्ति विहाय ।। (१।५९)

मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि परमात्मा अपने शरणागत जीव को किसी भी प्रकार के दुख से मुक्ति दिलाने में स्वतन्त्र हैं। अतः सती की दीनता को देख कर उस करुणामय श्रीराम का हृदय द्रवित हो उठा और अनिश्चित काल के लिये समाधि में बैठे हुए शिव के हृदय में बैठे हुए श्रीराम ने शिव को प्रेरित किया। उर प्रेरक श्रीराम से प्रेरित होकर शिव ने सत्तासी हजार वर्ष के बाद आज समाधि छोड़कर श्रीराम नाम का स्मरण किया जिससे सती को यह जान कर प्रसन्नता हुई कि जगत पति शिव समाधि से जग गये। तब सती ने जाकर शिव के चरणों में प्रणाम किया। सती का अब पत्नी के रूप में वाम भाग मे बैठने का अधिकार नहीं रह गया है, ऐसा जान कर शिव ने सती को अपने सन्मुख बैठने के लिये आसन दिया और उसके बाद श्रीराम की प्रेरणा से सती के मन को बहलाने के लिये रसमय श्रीराम कथा कहने लगे।

चौ०—जाइ शम्भु पद वन्दन कीन्हा, सन्मुख शंकर आसन दीन्हा।
लगे कहन हरि कथा रसाला, दक्ष प्रजेश भये तेहि काला।

'दक्ष प्रजेश भये तेहि काला' उसी समय दक्ष को सब प्रकार से योग्य समझ कर ब्रह्मा ने प्रजापति बना दिया। जब दक्ष को प्रजापति जैसा महत्वपूर्ण पद प्राप्त हो गया तब दक्ष के हृदय में अभिमान हो आया। ऐसा ही संसार में देखा जाता है कि जब किसी को कोई विशेषाधिकार प्राप्त हो जाता है तो उसे अभिमान हो जाता है और अभिमानी व्यक्ति दूसरों को भी दुख देता है और स्वयं भी एक दिन अभिमान के कारण दुख के गर्त में गिर जाता है। अभिमान ही सभी प्रकार की बुराइयों का जन्मदाता है। इसलिये यथा सम्भव अभिमान से दूर रहने का प्रयास करना चाहिये। अभिमानी व्यक्ति सबसे छोटा होता है जब कि उसे ऐसा लगता है कि मैं सबसे बड़ा हूँ। इसलिये जो जितना अभिमान से दूर रहेगा वह उतना ही महान और सुखी रहेगा। अस्तु दक्ष को जब प्रजापति का पद प्राप्त हो गया उसने सर्व-प्रथम भगवान शंकर का ही अपमान करने का विचार किया। इसलिए दक्ष ने सभी मुनियों

को बुलाकर एक यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञ में सभी देवताओं को आदर के साथ आमंत्रित किया किन्तु भगवान शिव को आमन्त्रित नहीं किया :

दो०—दक्ष लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग॥ (१।६०)

उस यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अतिरिक्त सभी देवता, गन्धर्व, किन्नर आदि अपनी-अपनी पत्नियों के साथ विमानों में बैठ कर चल दिये। अधिकांश वे सभी विमान कैलाश के ऊपर से ही जा रहे थे। सती ने उन सुन्दर विमानों को जाते हुए देखा जिनमें देवताओं की स्त्रियाँ बड़े मधुर स्वर से सुन्दर गीत गा रही थीं। यह सब देखकर सती को बड़ा आश्चर्य हुआ एवम् जानने की इच्छा से भगवान शिव के पास आकर पूछा कि हे देव! ये देवता लोग अपने-अपने विमानों में बैठकर कहाँ जा रहे हैं। इस प्रकार सती के पूछने पर शिव ने कहा। ये सब तुम्हारे पिता के यज्ञ में जा रहे हैं। यह सुनकर कि मेरे पिता यज्ञ कर रहे हैं सती को कुछ हर्ष हुआ। मन-ही-मन सती विचार करने लगी कि यदि महेश मुझे आज्ञा दें तो कुछ दिन के लिये मैं भी इस यज्ञ के बहाने से पिता के घर में रहूँ।

यहाँ पति के परित्याग से सती का जीवन नीरस हो गया है। वही कैलाश जहाँ कभी पति-प्यार में रहती हुई सती ने हजारों वर्ष बिता दिया था अब उसी कैलाश में सती को एक एक क्षण कल्प के समान बीत रहा है। इसलिये सती अब एक क्षण भी कैलाश में रहना नहीं चाहती हैं। जो सती एक क्षण भी आशुतोष शिव से दूर नहीं रह सकती थीं आज वही सती पति वियोग के असह्य दुख से पीड़ित एवम् हरि इच्छा से प्रेरित होकर पिता के घर जाने के लिये तैयार हो गई हैं। भगवान शिव ने सती की इच्छाओं को समझते हुए सती को समझाने का प्रयास किया परन्तु भावी वश सती को बोध नहीं हुआ। यद्यपि भगवान शंकर ने अनेकों प्रकार से सती को समझाया फिर भी जब सती नहीं मानीं तब हरि इच्छा को प्रबल समझ कर कुछ मुख्य गणों के साथ आशुतोष ने सती को विदा कर दिया :

दो०—कहि देखा हर यतन बहु, रहइ न दक्ष कुमारि।
दिये मुख्य गण संग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥ (१।६२)

भगवान शिव से बिदा होकर जब सती पिता के घर पहुँची तब दक्ष के भय से किसी ने उनका सम्मान नहीं किया। बहनें मुस्कराती हुई मिलीं जिससे सती यह स्पष्ट समझ रही हैं कि बहने मेरी हँसी उड़ा रही हैं। केवल माता आदर एवम् स्नेह से मिली। जगदात्मा शिव से विरोध करने वाला दक्ष कुछ नहीं बोला। तब सती को ध्यान आया कि मेरे पति ने यहाँ आने के लिये जो मुझे मना किया था उचित ही था। मेरा पिता दक्ष भगवान शिव से विरोध करने के लिये ही यह यज्ञ कर रहा है। अब इसका कुछ आभास हुआ। इसलिये सती यज्ञशाला में जाकर देखती हैं कि वहाँ सभी देवताओं का भाग तो है परन्तु भगवान शिव का भाग कहीं नहीं है। मेरे पति के अपमान के लिये ही यह यज्ञ किया जा रहा है ऐसा जानकर सती का क्रोध भड़क उठा। यद्यपि सती की माता ने सती को शान्त करने का प्रयास किया परन्तु शिव का अपमान सती से सहन होना असम्भव था। अब तो क्रोध ने और

भी प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। उस समय उस यज्ञ मण्डप में उपस्थित सभी देवताओं, जो यज्ञ में भाग लेने के लिये आए हुए थे, एवम् सभी मुनियों, जो भगवत विरोधी यज्ञ करा रहे थे उन सबों को हठपूर्वक चेतावनी देती हुई सती बोलीं—

चौ०—सुनहु सभासद सकल मुनिंदा, कही सुनी जिन्ह शंकर निंदा।
सो फल तुरत लहव सब काहूँ, भलीभाँति पछिताव पिता हूँ।

हे सभासदों एवं मुनियों! तुम लोग सुनो, तुममें से जिन लोगों ने भगवान शंकर की निन्दा की अथवा सुनी है उन सबों को बहुत ही शीघ्र उसका फल मिलेगा और मेरे पिता को भी अच्छी तरह से पछताना पड़ेगा क्योंकि ऐसी नीति है।

चौ०—सन्त शम्भु श्रीपति अपवादा, सुनिय जहाँ तहँ अस मर्यादा।
काटिय तासु जीभ जो बसाई, श्रवण मूंदि न त चलिय परायी।

भगवान विष्णु, भगवान शंकर एवम् सन्तों की जहाँ निंदा होती हो वहाँ ऐसी मर्यादा है यदि वश चले तो निन्दा करने वालों की जीभ काट लें और नहीं तो वहाँ से कान बन्द कर हट जाय।

इस प्रसंग से गोस्वामी जी ने हमें यह शिक्षा दिया है कि दूसरों की बुराई करने का, बुराई सुनने का और बुराई देखने का बराबर ही पाप होता है इसलिये न कभी किसी की बुराई करना चाहिए, न सुनना चाहिए और न देखना चाहिए—इन तीनों से बढ़कर आत्म शांति का शत्रु दूसरा कोई नहीं है।

यह ध्रुव सत्य है (क) साथ ही दूसरों की बुराई करने से वाणी की शक्ति नष्ट हो जाती हैं जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि कोई भी मंत्र चाहे वह भगवत नाम ही क्यों न हो जाप करने से कोई लाभ नहीं होता है। इसलिये यदि कोई भगवन्नाम जप एवं कीर्तन से अपना और दूसरों का कल्याण करना चाहता है तो वह सपने में भी किसी की बुराई न करे।

(ख) दूसरों की बुराई सुनने से श्रवण शक्ति नष्ट हो जाती है। जिससे कि वह कभी भी जीवन में भगवन्नाम संकीर्तन एवम् भगवत् चरित्र सुनने का अधिकारी नहीं रह जाता है जिस तरह से विष कीड़ा को सुन्दर से सुन्दर अमृतमय मधुर खाद्य पदार्थ दिया जाय तो वह उसे प्रिय नहीं लगता अपितु विष ही उसको प्रिय लगता है। उसी प्रकार से परनिन्दा सुनने का जिसे व्यसन पड़ चुका है उसे अमृतमय ज्ञान व भक्ति का उपदेश नहीं प्रिय लगता है।

(ग) दूसरों की बुराई देखने से चक्षु शक्ति नष्ट होकर छिद्रान्वेषण की शक्ति बढ़ जाती है जिससे वह किसी साधु पुरुष की साधुता के दर्शन एवम् भगवत् दर्शन का अधिकारी नहीं रह जाता है। इसलिये प्रत्येक मानव को इन तीनों प्रबल शत्रुओं से सावधान रहना चाहिए।

अस्तु, दक्ष के यज्ञ में उपस्थित सभी देवता एवम् मुनि दक्ष के समान ही शिव द्रोही हैं। ऐसा जान कर सती का हृदय अत्यधिक संतप्त हो उठता है और जिस प्रकार आग में तपा हुआ सोना अपने समस्त दोषों से मुक्त होकर शुद्ध रूप में प्रगट हो जाता है उसी प्रकार एक ओर से पति वियोग के दुख से और दूसरी ओर दक्ष के द्वारा किये हुए पति भगवान शंकर

के अपमान से उत्पन्न दुख ने सती के हृदय को शुद्ध कर दिया। अब जिनका हृदय शुद्ध हो चुका है वह जगदम्बा सती को अब तक की हुई समस्त भूलें कैसे हुई इसका ज्ञान हो गया जिसे सती स्वयं कहती है :

चौ०—जगदातमा महेश पुरारी, जगत-जनक सब के हितकारी।
पिता मन्द मति निन्दति तेही, दक्ष शुक्र सम्भव यह देही॥

जगदात्मा महेश जो जगत के पिता एवम् सबके हितकारी हैं मन्द बुद्धि वाला मेरा पिता उनकी निन्दा करता है और यह मेरा शरीर जगत्-आत्मा शिव से द्रोह करने वाला उसी दक्ष के वीर्य से उत्पन्न हुआ है। बस यही कारण है कि अब तक मुझसे भूल होती ही चली गई। ग्रन्थकार का भी यही मत है जैसा कि सती मोह प्रसंग के आरंभ में लिखा है :

चौ०—मुनि सन विदा मांगि त्रिपुरारी, चले भवन संग दक्ष कुमारी।
एवम् मध्य में—

दो० कहि देखा हर यतन वहु, रहइ न दक्ष कुमारि।
दिये मुख्य गन संग तव, विदा कीन्ह त्रिपुरारि॥ (१।६२)

इन उपर्युक्त तीनों स्थलों में दक्ष कुमारी के कहने का भी यही अभिप्राय है कि सती तुम्हारा यह शरीर शिव द्रोही दक्ष के वीर्य से उत्पन्न हुआ है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सती के जीवन में दो पक्ष था। पति का पक्ष और पिता का पक्ष। पति हैं विश्वास भगवान शंकर और पिता हैं दच्च अर्थात् चतुर। विश्वास जीव को ईश्वर के समीप ले जाता है और चतुरता जीव को ईश्वर से दूर कर देती है। इसलिये गोस्वामी जी ने लिखा भी है—

चौ०—मन क्रम वचन छांडि चतुराई, भजहु कृपा हरिहिं रघुराई।

इस अर्द्धाली में गोस्वामी जी ने मन, वचन, कर्म से चतुरता को छोड़कर ईश्वर का भजन करने के लिये कहा है। यहाँ चतुरता का अर्थ है तर्क युक्त बुद्धि, सद्बुद्धि नहीं। सद्-बुद्धि तो जीव को अन्धकार से प्रकाश में ले जाती है। परन्तु ठीक इससे विपरीत तर्क युक्त बुद्धि अर्थात् चतुरता जीव को प्रकाश से विमुख करके अन्धकार में ले जाती है। इस उक्त नियम के अनुसार सती के जीवन में जब कभी पति का पक्ष प्रबल हो उठता है तब सती ईश्वर में विश्वास करने लगती है और जब पिता का पक्ष प्रबल हो जाता है तब ईश्वर से विमुख हो जाती हैं। अतः सती को अब यह ज्ञान हो आया कि दच्च के वीर्य से उपत्पन्न होने के कारण ही इस शरीर ने मुझे अब तक धोखा दिया। इसलिये अब मैं इस शरीर को तुरन्त ही त्याग दूँगी। ऐसा कह कर योग अग्नि के द्वारा सती ने अपने शरीर को जला दिया। सती की मृत्यु से यज्ञ में हाहाकार हो उठा और सती का मरण सुनकर भगवान शिव के गण यज्ञ को विध्वंस करने लगे परन्तु मुनिवर भृगु ने जो कि उसमें यज्ञ के आचार्य थे अपनी योग शक्ति के द्वारा शिवगणों को भगा कर यज्ञ की रच्चा कर लिया। यह समाचार जब शंकर को मिला तो शंकर ने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। वीरभद्र ने यज्ञ स्थल में पहुँच कर उस यज्ञ को विध्वंस कर दिया क्योंकि वह यज्ञ ईश्वर विरोधी था और ईश्वर विरोधी यज्ञ में भाग लेने के लिये आए हुए उन सभी देवताओं को एवम् यज्ञकर्त्ता दक्ष प्रजापति को भी उचित दण्ड दिया।

दो०—सती मरण सुनि शम्भुगण, लगे करन मख खीस।
यज्ञ विध्वंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीश॥ (१।६४)

चौ०—समाचार सब शंकर पाए, वीरभद्र करि कोप पठाए ।
यज्ञ विध्वंस जाय तिन्ह कीन्हा, सकल सुरन्ह विधिवत फल दीन्हा ।।

यहाँ इस प्रसंग में भगवान शंकर ने वीरभद्र को भेज कर यज्ञ विध्वंस करवा दिया और यज्ञ में आए हुए सभी देवताओं के सहित दक्ष प्रजापति को भी दण्ड दिया गया ।

(क) इसका भाव यह है कि यज्ञ किया जाता है प्राणि मात्र के कल्याण के लिये जैसा कि भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि प्राणी मात्र उत्पन्न होता है अन्न से, अन्न उत्पन्न होता है बादल से और बादल उत्पन्न होता है यज्ञ से, इसलिये यज्ञ करना चाहिए । अतः यज्ञ का वास्तविक उद्देश्य होता है जगत का कल्याण, परन्तु दक्ष का यज्ञ तो जगदात्मा कल्याण स्वरूप शिव के विरोध में किया जा रहा था । इसलिए ऐसे यज्ञ का नष्ट हो जाना ही उचित था ।

(ख) देवताओं को दण्ड मिलना भी उचित ही था । क्योंकि ये देवता समय-समय पर इसी प्रकार से उस परमात्मा की दी हुई शक्ति को अपनी शक्ति मानकर उद्दंड हो जाते हैं और यह नियम है कि जब भी कोई उस परमात्मा की दी हुई शक्ति को अपनी शक्ति मान लेता है तब उसको दुखी होना पड़ता है । इसलिये ग्रन्थकार ने भी यहाँ यही कहा—

'सकल सुरन्ह विधिवत फल दीन्हा ।'

(ग) और अन्त में वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति का सिर काट कर हवन कुण्ड में हवन कर दिया जिससे दक्ष की मृत्यु हो गई । बाद में आसुतोष शिव ने बकरे का सिर जोड़कर दक्ष को जीवित कर दिया, कारण कि बकरा अभिमान का प्रतीक होता है । हमेशा मेंय मेंय करता रहता है । दक्ष भी अभिमान में ही उन्मत्त होकर कल्याण स्वरूप शिव से विरोध कर रहा था । इसलिये दक्ष को भी उचित ही दण्ड मिला ।

चौ०—सती मरत हरि सन वर माँगा, जनम जनम शिवपद अनुरागा ।
तेहि कारण हिम गिरि गृह जाई, जनमीं पारवती तन पाई ।।

सती ने मृत्यु से पूर्व ही श्रीहरि से यह वरदान माँगा था कि अब मैं पति वियोगिनी होकर एक चण भी जीना नहीं चाहती हूँ इसलिये बिना श्रम मेरा शरीर छूट जाय और जहाँ भी मेरा जन्म हो पुनः भगवान शंकर को ही पति के रूप में प्राप्त करूँ । इसलिये हिमांचल के घर में सती ने पुनः पार्वती के रूप में जन्म लिया ।

जब से उमा ने हिमांचल के घर में जन्म लिया तब से वह प्रदेश सभी प्रकार की सिद्धियों एवम् सुख सम्पत्ति से परिपूर्ण हो गया । दूर-दूर से मुनियों ने आकर वहाँ सुन्दर आश्रमों की स्थापना की । वहाँ के वृक्ष एवम् लताएँ सुन्दर फल-फूलों से लद गए । पर्वतों में अनेकों प्रकार के मणियों की खान प्रगट हो गई । नदियों में पवित्र एव स्वादिष्ट जल बहने लगे । पशु-पक्षी एवम् भ्रमर सब सुखी हो गए । स्वभाव से वैर रखने वाले सभी जीव-जन्तु अपने स्वाभाविक वैर को छोड़कर परस्पर प्रेम से एक साथ रहने लगे ।

पार्वती के जन्म से उस हिमांचल प्रदेश की उसी प्रकार शोभा होने लगी जैसे श्रीराम की भक्ति प्राप्त हो जाने से मानव जीवन की शोभा होती है । इस पार्वती के जन्म चरित्र से हमें यह उपदेश मिलता है कि शक्ति ही जीवन की शोभा है । शक्ति के बिना हम शव की भाँति

अशोभनीय हो जाते हैं। अतः पार्वती के जन्म से हिमांचल के घर में नित्य नवीन मंगल होने लगा। महाशक्ति ने पार्वती के रूप में जन्म लिया है, इसलिए ब्रह्मादिक देवता भी हिमांचल के यश गाने लगे।

चौ०—नारद समाचार सब पाए, कौतुक ही गिरि गेह सिधाए।

देवर्षि नारद को जब पार्वती जन्म का समाचार मिला तब क्षण मात्र में ही हिमांचल के घर में पहुँच गए। शैल राज ने अर्घ पाद्य से विधिवत पूजन करके नारद जी को बैठने के लिये सुन्दर आसन दिया तथा अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए अपनी बेटी को बुलाकर नारद के चरणों में प्रणाम कराया।

दो०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुण, मुनिवर हृदय विचारि॥ (१।६६)

आप त्रिकालदर्शी हैं, सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र गति है इसलिये हे मुनिवर! मेरी बेटी उमा के दोष-गुणों का हृदय में विचार कर बताएँ कि इसका कैसा भविष्य होगा। नारद जी हस्तरेखा विज्ञान के महान पंडित माने जाते हैं इसलिए मानस के अन्य स्थलों में भी हस्तरेखा देखकर भविष्य बताने या जानने का प्रसंग मिलता है जैसे विश्वमोहिनी की हस्तरेखा देखकर नारद ने सब कुछ जान लिया परन्तु वहाँ हस्तरेखाओं का अर्थ करने में नारद से थोड़ी भूलें हो गई क्योंकि उस समय भगवान की माया से नारद जी मोहित थे परन्तु यहाँ त्रिकाल दर्शी एवम् सर्वज्ञ कहने का यह भाव है कि इस समय नारद माया से मोहित नहीं हैं। वहाँ उस समय नारद के हृदय में काम राज्य था और यहाँ इस समय राम राज्य है। काम ग्रसित हृदय के कारण नारद की त्रिकाल दर्शिता एवं सर्वज्ञता नष्ट-प्राय हो चुकी थी परन्तु यहाँ काम रहित शुद्ध हृदय होने के कारण नारद जी त्रिकाल दर्शी एवम् सर्वज्ञ हैं। इसलिये हिमांचल ने कहा महाराज आप त्रिकालदर्शी हैं, सर्वज्ञ हैं। आपको अवव्याहत गति प्राप्त है, आप विश्व ब्रह्माण्ड में कहीं भी क्षण मात्र में पहुँच सकते हैं इसलिये आप हमारी बेटी के दोष गुणों पर विचार कर कहें कि हमारी बेटी उमा को कैसा घर-वर प्राप्त होगा एवम कैसा भविष्य होगा। यह सुनकर नारद जी हँसकर बोले—

चौ०—कह मुनि विहंसि गूढ़ मृदु वाणी, सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।

हे महाराज! आपकी बेटी तो समस्त गुणों की खान है, सहज सुन्दर है, सुशील है, सयानी है, एवम् सभी लक्षणों से सम्पन्न है, सदैव अपनी पति की प्यारी एवं उमा, अम्बिका, और भवानी इन नामों से प्रसिद्ध होगी। इसका सौभाग्य अचल होगा और उमा के माता-पिता बनने के कारण आप दोनों को संसार में बहुत यश मिलेगा और सारे संसार की यह पूजनीया होगी। इनकी सेवा करने से मनुष्यों को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। और इनका नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म, जो तलवार की धार की तरह से है, उस पर चढ़ेंगी अर्थात पातिव्रत धर्म आरम्भ करेंगी।

'सुता तुम्हारि सकल गुन खानी' यहाँ से आरम्भ करके 'शैल सुलक्षन सुता तुम्हारी' यहाँ तक नारद ने पार्वती के गुणों का वर्णन किया। यही है नारी का नारीत्व—

(क) भारतीय संस्कृति में प्रत्येक नारी अपने-अपने पति की आह्लादिनी शक्ति होती

है। पति का सारा आह्लाद अर्थात आनन्द पत्नी में बसता है। यही है आह्लादिनी शक्ति का अर्थ। इसलिये भारतीय पद्धति के अनुसार विवाह के अवसर पर जब पिता वर के हाथ में अपनी कन्या को सौंप देता है और वर जब वधू का पाणिग्रहण कर लेता है तब उसी समय वधू वर के बाम भाग में बैठ जाती है। इसका अर्थ होता है कि पति ने अपना हृदय अपनी आह्लादिनी शक्ति पत्नी को सौंप दिया और तब से पत्नी अपने पति के हृदय की स्वामिनी बन जाती है।

(ख) भारत ऋषि मुनियों की भूमि एवं धर्म का उद्गम स्थान है। यहाँ के सभी कार्यों में धर्म की ही प्रधानता रहती है। यहाँ विवाह भी धर्म की प्राप्ति के लिये ही किया जाता है एवम् पति पत्नी के जीवन में धर्म ही प्रधान माना जाता है, भोग नहीं जबकि अन्य देशों में स्त्रियाँ प्रधानतया भोग वस्तु ही मानी जाती हैं। इसलिये जब तक वे तरुणी एवं सुन्दरी हैं तभी तक समाज में उन्हें आदर एवं प्रेम मिलता है परन्तु अवस्था अधिक हो जाने के कारण सुन्दरता समाप्त हो जाने पर सहस्त्रों में कोई एकाध ही भाग्य-शालिनी माताएँ होती हैं जिन्हें माता के रूप में आदर से युक्त प्यार एवं सेवा प्राप्त होती हो। जब कि भारतीय स्त्रियों की स्थिति अन्य देशों की स्त्रियों से सर्वथा भिन्न है। भारतीय स्त्रियाँ बचपन में माता-पिता के प्यार में एवं देख-रेख में पलती हैं, तरुणी होने पर उन्हें पति का भरपूर प्यार मिलता है और माता बन कर तो अपने पुत्रों से इष्ट देवी की तरह से पूजा कराती ही हैं।

(ग) इस भारत में आरम्भ से ही संयुक्त परिवार के रूप में रहने की परम्परा चली आ रही है, भविष्य में भी रहेगी और रहना भी चाहिए। संयुक्त परिवार के रूप में रहने के लिये परिवार के प्रत्येक सदस्य को अपने जीवन में महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है जैसे माता-पिता का कर्तव्य, पिता पुत्र का कर्तव्य, माता पुत्र का कर्तव्य, भाई-भाई का कर्तव्य, पति पत्नी का कर्तव्य, इन कर्तव्यों का पालन करना ही मानवता है और इन कर्तव्यों से विमुख हो जाना ही पशुता है। संक्षिप्त में यही है संयुक्त परिवार का स्वरूप जिसे हम मानवता भी कह सकते हैं और इस संयुक्त परिवार रूपी सुन्दर भवन की आधार शिला भारतीय संस्कृति में स्त्रियाँ ही मानी जाती हैं। अतः इन उपर्युक्त नारी धर्म एवं नारी गरिमा का मूर्त रूप पार्वती जी को समझना चाहिए।

पार्वती जी नारी धर्म की गुरु मानी जाती हैं। जैसा कि नारद जी ने पार्वती के लक्षणों को बताते हुए कहा है—

चौ०—यहि कर नाम सुमिरि संसारा, त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा।

अस्तु, हिमांचल ने नारद जी से कहा था कि महाराज आप हमारी बेटी के गुणों-दोषों को हृदय में विचार कर कहें, तो नारद ने यहाँ तक पार्वती के गुणों का वर्णन किया। अब जो पार्वती में दोष हैं उनको कहते हैं।

चौ०—सैल सुलक्षन सुता तुम्हारी, सुनहु जे अब अवगुण दुई चारी।
अगुण अमान मातु पितु हीना, उदासीन सब संशय क्षीना।
दो०—योगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल भेष।
अस स्वामी यहि कहँ मिलहिं परी हस्त अस रेख॥ (१६७)

हे महाराज ! आपकी बेटी समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न हैं परन्तु दो-चार अवगुण भी जो इनमें हैं वह भी आप सुनें । अगुण जिसमें कोई गुण न हो, अमान—जिसका कोई मान न हो—माता-पिता से हीन । उदासीन-उदास रहने वाला और जिसका सब संदेह नष्ट हो चुका हो । योगी, जटिल—बड़ी-बड़ी जटाओं को धारण करने वाला । अकाम—जिसके मन में कोई काम न हो । नगन—नंगा रहने वाला । अमंगल भेष—अर्थात् चिता की भस्म, मुंड माला आदि धारण करने वाला—ऐसा पति आपकी बेटी उमा को मिलेगा । ऐसी ही रेखा उमा के हाथ में पड़ी है । यह हैं पार्वती के दो-चार अवगुण ।

ये नारद के वचन दो अर्थों से युक्त हैं जिसे सुनकर एक ओर पार्वती के माता-पिता दुखी हो गये परन्तु दूसरी ओर उमा को बड़ा हर्ष हुआ क्योंकि दो अर्थों से युक्त नारद के इन वचनों के द्वारा जहाँ एक ओर भूत भावन भगवान शंकर की ओर संकेत मिलता है एवं प्रशंसा होती है वहीं वाह्य दृष्टि से निन्दा मालूम पड़ती है । प्रशंसा के पक्ष में इन अवगुणों का अर्थ यह है जैसे अगुन, अगुन का अर्थ है त्रिगुणातीत ब्रह्म । अमान का अर्थ मान-अपमान, शत्रु-मित्र, दुख-सुख इन समस्त द्वन्दों से जो परे हैं । मातु पितु हीना का अर्थ है—स्वयम्—जो स्वयं प्रगट हुए हैं । उदासीन का अर्थ है—महान बीतरागी । संशय क्षीना का अर्थ है—जिनको कभी सन्देह नहीं होता । योगी का अर्थ है—परम योगेश्वर । जटिल का अर्थ है—महान तपस्वी । अकाम मन का अर्थ है स्पृहा से रहित । नगन का अर्थ है—आत्मदर्शी । अमंगल भेष का अर्थ है—परमहंस । इन समस्त गुणों से सम्पन्न सर्व समर्थ आशुतोष भगवान शिव ही मेरे पति हैं । इस वास्तविक अर्थ को समझ कर तो पार्वती को हर्ष हुआ परन्तु इससे विपरीत अर्थ, जिसे मैं पूर्व में ही साधारण अर्थ के रूप में लिख चुका हूँ, समझ कर माता-पिता को दुख हुआ ।

देवर्षि की वाणी झूठी नहीं हो सकती है यह सोच कर पार्वती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई एवम् शिव के चरण कमलों में स्नेह उत्पन्न हुआ परन्तु पार्वती के माता-पिता मयना एवम् हिमांचल को दुख हुआ । हृदय में धैर्य धारण कर गिरिराज ने कहा कि हे नाथ ! क्या उपाय करना चाहिए जिससे मेरी बेटी उमा को सुन्दर वर प्राप्त हो सके । इस पर नारद ने कहा :

दो०—कह मुनीश हिमवन्तु सुनु, जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनि हार ।। (११६८)

मुनीश नारद ने कहा कि हे हिमवन्त ! विधाता ने जो कुछ लिख दिया उसे देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई मिटा नहीं सकते हैं ।

यहाँ नारद ने कर्म की प्रधानता बताया क्योंकि देव भी स्वतन्त्र नहीं हैं । जो जीव जैसा कर्म करता है उसी प्रकार देव उसके भाग्य में लिख देता है । इसलिये कर्म ही प्रधान है । अतः प्रत्येक जीव अपने किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगा करता है । इन शुभ-अशुभ कर्मों से छूटने का एक ही उपाय है—निष्काम भाव से परमात्मा की भक्ति । अन्यथा इन शुभ-अशुभ कर्मों में बँधा हुआ जीव अनन्त जन्मों में भी नहीं छूट सकता है ।

अस्तु, नारद ने कहा कि जो कुछ लिखा है भाग्य में वह बदल नहीं सकता है फिर भी मैं एक उपाय बताता हूँ हो सकता है कि दैव उसमें सहायता करें।

चौ०—तदपि एक मैं कहउँ उपाई, होइ करे जों दैव सहाई।

उमा के लिये जैसे वर का मैंने वर्णन किया वह अवश्य मिलेगा इसमें संदेह नहीं। परन्तु जो वर का दोष मैंने बताया है मेरे अनुमान से सब शिव में मिलते हैं।

यदि उमा का विवाह शिव से हो जाय तो यह दोष भी गुण हो जायेंगे। प्रथम नारद ने पार्वती की हस्तरेखा देखकर सामान्य अर्थ किया था अर्थात् उसे अवगुण बताया था परन्तु यहाँ उसका विशेष अर्थ कर रहे हैं। सामान्य अर्थ के रूप में अगुन, अमान, माता-पिता से हीन जहाँ पार्वती के लिये दोष सिद्ध हो रहा था वही सारी बातें अब भगवान शंकर के साथ जुड़ जाने पर गुण के रूप में परिणत हो रही हैं। जैसे श्री हरि सर्प की सेज पर सोते हैं और सर्प विष रूपी दोष से युक्त है परन्तु श्रीहरि के सोने से विद्वान जन उक्त दोष को दोष नहीं मानते हैं, जैसे सूर्य और अग्नि सभी रसों को खाते हैं परन्तु सूर्य तथा अग्नि को कोई मन्द अर्थात् बुरा नहीं मानता, जैसे शुद्ध और अशुद्ध जल सब गंगा में बहता है परन्तु गंगा को कोई अशुद्ध नहीं मानता। क्योंकि जो समर्थ हैं उसे कोई दोष नहीं लगता जैसे सूर्य, अग्नि और गंगा। यहाँ कहा गया है कि जो सामर्थवान हैं उन्हें दोष नहीं लगता है। इनमें चार का नाम लिया गया है—(१) श्री हरि विष्णु, (२) सूर्य, (३) अग्नि तथा (४) गंगा।

भगवान श्री हरि सर्प पर सोते हैं। सर्प का अर्थ है काल। यदि साधारण जीव को काल का स्पर्श हो जाय तो उसकी मृत्यु हो जाती है परन्तु श्री हरि का एक नाम है अकाल पुरुष इसलिये काल के गोद में सोने पर भी काल का श्री हरि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे हैं सूर्य जो अपनी किरणों के द्वारा पवित्रतम गंगा जल को भी ग्रहण करते हैं और महा अपवित्र मल मूत्रादिकों का जो जल है उसको भी ग्रहण करते हैं। सूर्य की किरणों के द्वारा ग्रहण किया हुआ अशुद्ध जल भी शुद्ध होकर वर्षा के रूप में सब का पोषक बन जाता है। तीसरी है अग्नि शुद्ध-अशुद्ध सबको जला कर राख बना देती है। परन्तु अग्नि को कोई दोष नहीं लगता। चौथी हैं गंगा जिसमें शुद्ध-अशुद्ध सभी जल मिल कर गंगा जल बन जाता है।

इन चार उदाहरणों के द्वारा गोस्वामी जी ने यह शिक्षा दिया कि जो तेजस्वी हैं उन्हें कोई दोष नहीं लगता। इसका भावार्थ यह है कि जो लोकोत्तर पुरुष हैं, जिन्होंने ब्रह्म ज्ञान अथवा परमात्मा की भक्ति प्राप्त कर लिया है और ज्ञान या भक्ति के द्वारा जो ब्रह्म के तदरूप हो चुके हैं या जो ब्रह्म के स्तर के महानुभाव हैं उन्हें कोई भी सामान्य दोष स्पर्श नहीं कर सकता है अपितु दोष भी वहीं गुण बन जाता है परन्तु जो जड़ मनुष्य अपने अभिमान, ईर्ष्या एवं अज्ञान वश होकर ऐसे लोकोत्तर पुरुषों में दोष ढूँढ़ता है या देखता है वह पूरे एक कल्प तक नरक में वास करता है क्योंकि जीव ईश्वर की समानता नहीं कर सकता है अर्थात जब तक अज्ञान है तब तक वह जीव है और जब तक वह जीव है तब तक ईश्वर और ईवश्र के समान लोकोत्तर पुरुषों, जो अज्ञान से मुक्त होकर के ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो चुके हैं, उनसे स्पर्धा (बराबरी) नहीं कर सकता है।

दो०—जो अस ईर्ष्या करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं कल्प भरि नर्क मह, जीव कि ईश समान ।। (१६९)

गंगा जल से बने होने पर भी जैसे मदिरा को सत्पुरुष कभी नहीं पीते हैं वैसे ही जब तक यह जीव अज्ञान वश ईश्वर से विमुख है तब तक वह समस्त शुभाशुभ कर्मों से बाधित होता है।

चौ०—सुरसरि जल कृत वारूणि जाना, कवहुँ न संत करहिं तेहि पाना।

परन्तु जैसे मदिरा गंगा में मिलकर पवित्रतम गंगा जल बन जाता है उसी प्रकार से अनीश अर्थात् जीव ईश्वर को प्राप्त होकर समस्त शुभाशुभ कर्मों से छूटकर ईश्वर बन जाता है अथवा ईश्वर की समानता को प्राप्त कर लेता है।

चौ०—सुरसरि मिलइ सो पावन जैसे, ईश अनीशहि अन्तर तैसे।

अस्तु नारद जी कह रहे हैं कि हे हिमांचल! भगवान शंकर सर्व समर्थ हैं। यदि पार्वती का विवाह शंकर से हो जाय तो जैसे अनीश भी ईश में मिलकर ईश हो जाता है उसी प्रकार उपर्युक्त पार्वती के दोष जिसे मैं पूर्व कह चुका हूँ, वह दोष भी गुण बन जायगा। यद्यपि महेश की आराधना कठिन है फिर भी वे आशुतोष हैं (आशुतोष का अर्थ है जो एक बूंद आँसू पर संतुष्ट हो जाय) शीघ्र ही प्रसन्न होकर उक्त के कलेश को दूर कर देंगे। यदि तुम्हारी बेटी तपस्या करे तो वे, त्रिपुरारि हैं, भावी भी मिटा सकते हैं।

यद्यपि संसार में अनेक वर हैं परन्तु मेरे विचार से उमा का वर तो शिव को छोड़कर दूसरा नहीं हो सकता है। शिव कृपा के सिन्धु हैं, वर देने योग्य हैं, शरण में आए हुए के दुख को दूर करने वाले हैं और सेवक के मन को सुखी करने में समर्थ हैं। ऐच्छित फल बिना शिव की आराधना किए और किसी उपाय से नहीं प्राप्त हो सकता है।

चौ०—वरदायक प्रणतारति भंजन, कृपा सिंधु सेवक मन रंजन।
इच्छित फल विनु शिव अवराधे, लहिय न कोटि जोग जप साधे।

ऐसा कह कर नारद ने श्री हरि का स्मरण किया और गिरिजा को आशीर्वाद देते हुए गिरीश-गिरियों के ईश हिमांचल से कहा कि महाराज आप संशय छोड़ दें। आपकी बेटी का अवष्यमेव कल्याण होगा।

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरि—जहिं दीन्ह अशोश।
होइहि अब कल्याण सब, संशय तजहु गिरीश ।। (१७०)

इस प्रसंग में नारद ने प्रथम तो पार्वती में अवगुण बताया इन अवगुणों से युक्त वर इसको मिलेगा। बाद में उन अवगुणों को भगवान शंकर से जुड़ जाने पर कहा कि यदि पार्वती का विवाह शिव से हो जाय तो ये अवगुण भी गुण हो जायेंगे। परन्तु शिव की आराधना कठिन है फिर भी तुम्हारी बेटी यदि तपस्या करे तो शिव प्रसन्न होकर पार्वती के क्लेश को दूर कर देंगे।

यहाँ नारद ने तपस्या पर जोर दिया तपस्या का अर्थ है—प्रबल कर्म। कर्म तीन प्रकार

के होते हैं—(१) संचित कर्म (२) प्रारब्ध कर्म (३) क्रियमान कर्म।

१—संचित कर्म का अर्थ है पूर्व जन्म के किये हुए अच्छे बुरे कर्म जो कोष में जमा पड़ा है जो फल नहीं दे रहा है।

२—प्रारब्ध कर्म का अर्थ है—जो संचित कोष से निकल कर अच्छे-बुरे कर्म फल देने के लिए क्रमबद्ध (लाइन में) खड़ा है।

३—क्रियमान कर्म का अर्थ है जो हम प्रतिदिन करते रहते हैं। क्रियमान कर्म के दो भेद हैं—सामान्य क्रियमान कर्म और प्रबल क्रियमान कर्म। सामान्य क्रियमान कर्म जो हम साधारण रूप में दैनिक पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत आदि शुभ कर्म और साधारण झूठ बेईमान आदि पाप कर्म करते हैं यही हैं सामान्य क्रियमान कर्म जो तत्काल फल न देकर संचित कोष में जमा हो जाता है। परन्तु कालान्तर में समय आने पर वह अपना फल देता है।

चौ०—जानि शरद ऋतु खंजन आए, पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।
(४।१५)

और प्रबल क्रियमान कर्म उसे कहते हैं जो संचित कोष में जमा नहीं होता अपितु पंक्तिबद्ध खड़े उन प्रारब्ध कर्मों को पीछे ढकेल कर स्वयं फल देने लग जाता है। परन्तु प्रबल क्रियमान कर्म साधारण मनुष्य नहीं कर सकता है कोई बिरला ही कर सकता है। प्रबल क्रियमान कर्म के द्वारा मनुष्य अपने प्रारब्ध को बदल सकता है परन्तु ऐसा करना अत्यन्त दुष्कर है।

इसलिए नारद ने हिमांचल से कहा कि यदि तुम्हारी बेटी प्रबल क्रियमान रूपी तपस्या कर सके तो भगवान शंकर जो यहाँ प्रबल क्रियमान कर्म के प्रतीक हैं भाग्य मिटा सकते हैं। ऐसा कह कर नारद ने पार्वती एवम् हिमांचल के मनोबल को बढ़ाने के लिए आशीर्वाद दिया।

चौ०—अस कहि ब्रह्म भवन मुनि गयऊ, आगिल चरित सुनहु जस भयऊ।

ऐसा कह कर मुनि नारद ब्रह्मलोक चले गए। अब आगे जो कुछ हुआ उसे सुनो। एकान्त में अपने पति हिमांचल से महारानी मयना बोली, हे नाथ! मैं मुनि के वचन समझ नहीं पाई। यहाँ न समझ पाने का अर्थ है कि मेरी इतनी सुन्दरी बेटी के लिये जैसा वर मिलने की बात नारद ने कहा तो मुझे नारद की बात पर विश्वास नहीं है इसलिये यदि घर, वर और कुल हमारी बेटी उमा के अनुरूप मिले तभी विवाह करना चाहिए। क्योंकि हे नाथ! उमा मुझे प्राण के समान प्यारी है अतः मेरी बेटी भले क्वांरी रह जाय परन्तु अयोग्य वर के साथ हमें बेटी का विवाह नहीं करना है। यदि आपने गिरिजा का विवाह अयोग्य वर के साथ कर दिया तो लोग स्वभाव से ही जड़ पहाड़ कह कर आपकी निन्दा करेंगे, इसलिये सोच-समझ कर सुयोग्य वर के साथ ही गिरिजा का विवाह करें जिससे कि भविष्य में आपको दुख न हो।

चौ०—पतिहि एकान्त पाइ कह मयना, नाथ न मैं समझेउँ मुनि बयना।
जो घर वर कुल होइ अनूपा, करिय विवाह सुता अनुरूपा।
न तु कन्या वरू रहे कुमारी, कन्त उमा मम प्राण पियारी।
जो न मिलहिं वर गिरिजहिं योगू, गिरि जड़ सहज कहहिं सब लोगू।
सोइ विचारि पति करहु विवाहू, जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥

इस प्रसंग में मयना अपने पति हिमांचल से कह रही हैं कि पार्वती के अनुरूप घर, वर, कुल होने पर ही विवाह करना चाहिए अन्यथा स्वभाव से जड़ पहाड़ कह कर लोग आपकी निन्दा करेंगे और स्वयं भी भविष्य में आपको घोर कष्ट होगा। इसका अभिप्राय यह है कि भारतीय संस्कृति में विवाह केवल भोग की दृष्टि से नहीं किया जाता है अपितु विवाह किया जाता है धार्मिक सन्तान की प्राप्ति के लिये और वह धार्मिक सन्तान ऐसी हो जो इस संसार में माता-पिता की सेवा करे ही और अन्त में जहाज बन कर माता-पिता को संसार सागर से पार कर दे। परन्तु ऐसी सन्तान भी उत्पन्न हो सकती है जब ये चार प्रकार की शुद्धियों का योग बने :

(१) मातृ शुद्धि (२) पितृ शुद्धि (३) देश शुद्धि (४) द्रव्य शुद्धि।

मातृ शुद्धि का अर्थ है जिसकी माता पवित्र कुल में उत्पन्न हुई हो एवम् जिसका स्वयं का भी चरित्र शुद्ध हो और पितृ शुद्धि का भी यही अर्थ है। देश शुद्धि का अर्थ है कि जिसके माता-पिता का जन्म उत्तम संस्कृति एवम् पवित्र देश में हुआ हो और द्रव्य शुद्धि का अर्थ है जिसकी कमाई अच्छी हो, क्योंकि झूठ और बेईमानी से जो धन कमाया जाता है उसका सबसे बड़ा प्रभाव संतान पर पड़ता है। जो झूठ और बेईमानी से धन कमाते हैं निश्चय उनकी सन्तान बर्बाद हो जाती है और इसका घोर कष्ट माता-पिता को होता है और साथ ही भारतीय संस्कृति में विवाह एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण सम्बन्ध माना जाता है और वह सम्बन्ध केवल शरीर तक ही सीमित न रहे आत्मा से भी जुड़ सके इसके लिये धर्म एवं गुरु जनों के साक्षी में वेद मन्त्रों के द्वारा भारत में विशेष विधि से विवाह सम्पन्न कराया जाता है। यही कारण है कि पति-पत्नी एक दूसरे की ममता में बँधे हुए बड़े स्नेह के साथ एक दूसरे को जीवन भर निभाते हैं। इसलिए महारानी मयना कह रही हैं कि बेटी उमा के अनुरूप घर, वर, कुल होने पर ही विवाह करना चाहिए।

ऐसा कह कर मयना अपने पति के चरणों में गिर पड़ी तब गिरीश अर्थात् गिरियों के स्वामी हिमांचल प्रेम के साथ बोले कि चन्द्रमा में अग्नि भले प्रगट हो जाय परन्तु नारद का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता है। इसलिये हे प्रिया! सोच का परित्याग करो और श्री भगवान का स्मरण करो। पार्वती को जिन्होंने इतना सुन्दर बनाया है वही कल्याण करेंगे और यदि तुमको अपनी बेटी पर बहुत स्नेह है तो तुम जाकर ऐसी शिक्षा दो जिससे कि तुम्हारी बेटी उमा तपस्या करे क्योंकि तपस्या के बिना महेश नहीं मिल सकते हैं और बिना महेश की कृपा से दुख नहीं मिट सकता है। नारद का वचन सारगर्भित एवं विशेष कारण से युक्त है। भगवान बृषभकेतु सब प्रकार से सुन्दरतम गुण के खजाना हैं ऐसा विचार कर तुम अपने मन की शंका को त्याग दो। शंकर सब प्रकार के कलंक से रहित है।

चौ०—अस कहि परी चरन धरि शीशा, बोले सहित सनेह गिरीशा।
बरू पावक प्रगटे शशि मांही, नारद वचन अन्यथा नाहीं।

दो०—प्रिया सोच परिहरहु अब, सुमिरहु श्री भगवान।
पार्वतिहिं निर्मयइ जेहि, सोइ करिहहिं कल्यान॥ (१७१)

चौ०—अब जो तुम्हहिं सुता पर नेहू, तो यह जाय सिखावन देहू।
करे सो तप जेहि मिलहिं महेशू, आन उपाय न मिटहिं कलेसू।
नारद वचन सगर्भ सहेतू, सुन्दर सब गुण निधि वृष केतू।
अस विचारि तुम तजहु अशंका, सवइ भाँति शंकर अकलंका।

इस प्रसंग में हिमांचल ने अपनी पत्नी मयना से कहा कि यदि तुमको अपनी बेटी उमा पर अधिक स्नेह है तो तुम जाकर उमा को ऐसी शिक्षा दो जिससे वह तपस्या करे क्योंकि देवर्षि नारद का वचन विशेष अर्थ से युक्त है इसलिये मिथ्या नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि असली प्रेमी और प्रेम वही है जो ईश्वर से मिलने में सहयोग करे। यही प्रेम और प्रेमी की कसौटी है और जो इससे विपरीत आचरण करे वह प्रेम और प्रेमी दोनों ही त्याग देने योग्य हैं। जैसे :

जेहि के प्रिय न राम वैदेही, तजिय ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।
तजे पिता प्रहलाद विभीषण, वन्धु भरत महतारी
बलि गुरू तजे कन्त वृज वनितन, भइ मुद मंगल कारी
न तो नेह राम ते मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्राण ते प्यारो
जासो होइ नेह राम पद, ए तो मतौ हमारो (विनय पत्रिका)

इस विनय पत्रिका के पद से भी हमें यही शिक्षा मिलती है कि वही अपना प्रिय जन है जो श्री राम से मिलने में सहायता करे और चाहे वे माता-पिता ही क्यों न हों यदि हमें ईश्वर से विमुख करें तो ऐसे माता, पिता एवम् प्रिय जनों को करोड़ों शत्रु के समान त्याग देना चाहिये।

अतः महाराज हिमांचल का मयना से कहने का भाव भी यही है कि यदि तुमको बेटी पर अधिक स्नेह है तो तुम्हारे स्नेह की यही कसौटी है कि तुम उमा को तपस्या करने के लिये उपदेश देकर बन में भेज दो। इस प्रकार का पति का वचन सुन कर मयना प्रसन्न हुईं और वहाँ से उठकर तुरन्त गिरिजा के पास गईं। उमा को देख कर आँखों में आँसू भर आया। स्नेह के साथ गोद में बिठा कर बार-बार हृदय से लगाती हैं और कुछ कहना चाहती हैं परन्तु गला भर आया है इसलिये कुछ कह नहीं पा रही हैं। जगत माता भवानी अर्थात पार्वती अपनी सर्वज्ञता से मयना की इच्छाओं को समझती हुई माता को सुख देने वाली वाणी बोली।

चौ०—जगत मातु सर्वज्ञ भवानी, मातुसखद बोली मृदु बानी।

हे माँ! मैंने एक स्वप्न देखा है, वह स्वप्न तुमको सुनाती हूँ सपने में एक बहुत ही सुन्दर गौरवर्ण के श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे यह उपदेश दिया है।

दो०—सुनहु मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि।
सुन्दर गौर सुविप्र वर, अस उपदेसेहु मोहि॥ (१।७२)

इस दोहे में स्वप्न के द्वारा तपस्या करने का उपदेश पार्वती को मिला है। और इस स्वप्न के अनुसार साधना करने पर पार्वती को सिद्धि भी मिली है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वप्न की स्थिति भी है, जबकि बहुत से लोग स्वप्न को सत्य नहीं मानते हैं। उन लोगों का कहना है कि जब यह दृष्ट जगत ही असत्य है तो स्वप्न कैसे सत्य हो सकता है। परन्तु वैष्णवाचार्यों के मत में जगत तो भगवत्स्वरूप होने के कारण सत्य है ही स्वप्न भी सत्य है। जैसे जागृत अवस्था में जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुख भोगा करता है उसी प्रकार से स्वप्न में भी सूक्ष्मतम शुभाशुभ कर्मों का फल जीव भोगता है इसके अतिरिक्त भविष्य में घटने वाली घटनाओं का संकेत भी स्वप्न के द्वारा मिलता है जैसा कि यहाँ पार्वती जी को मिला।

हे शैलकुमारी ! तुम बन में जाकर तपस्या करो। नारद ने जो कुछ कहा है सत्य है। अर्थात् भगवान शिव ही तुम्हारे पति हैं परन्तु तपस्या के बिना वे तुमको प्राप्त नहीं होगें। माता-पिता को भी यह मत प्रिय है। तप से ही सब दोष नष्ट होकर सुख प्राप्त होता है। इसके अनेक उदाहरण हैं। तप बल से ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं, तपवल से ही विष्णु जगत का पालन करते हैं। तपबल से ही शंकर संसार का संहार अर्थात् कल्याण करते हैं, तपवल से ही शेष पृथ्वी का भार वहन करते हैं। सृष्टि का आधार ही तप है, इसलिए हे भवानी तप ही सुखप्रद है। ऐसा समझ कर बन में जाकर तपस्या करो।

यहाँ इस प्रसंग से हमें यह शिक्षा मिलती है कि तपस्या ही सर्वोपरि एक श्रेष्ठतम साधन है जिसके द्वारा हम अपने जीवन की सभी समस्याओं को हल कर सकते हैं। इसके अनेक उदाहरण स्वयं ग्रन्थकार ने यहाँ दिया है, इनमें सर्वप्रथम ब्रह्मा का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है कि तपबल से ही ब्रह्म सृष्टि करते हैं इसकी कथा इस प्रकार से है।

सर्वप्रथम कमल से ब्रह्माजी का जन्म हुआ और जब ब्रह्मा ने अपने को कमल के ऊपर बैठा हुआ पाया तब चिन्ता हुई कि मैं कहाँ से आया ? कौन मेरे माता-पिता हैं ? क्योंकि उस समय ब्रह्मा को एक मात्र जल के अतिरिक्त दूर-दूर तक दृष्टिपात करने पर भी कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। बहुत प्रयास करने पर भी जब ब्रह्माजी को कुछ भी समझ में नहीं आया तब व्याकुल हो उठे। उस समय आकाशवाणी हुई। तप करो। तप करो। तप के द्वारा सब कुछ जान जाओगे। तब ब्रह्मा ने हजारों वर्षों तक कठोर तप किया और अन्त में तप के द्वारा ब्रह्मा ने यह जान लिया कि मेरे अतिरिक्त एक सनातन ब्रह्म भी हैं जिसमें कि यह अखिल जगत महाप्रलय होने पर निवास करता है और अब उसी सनातन ब्रह्म ने अखिल जगत को पुनः प्रगट करने की इच्छा से मुझे प्रगट किया है। इस प्रकार भगवत् इच्छा को समझते हुए पूर्व कल्प की सृष्टि को ब्रह्मा ने योग शक्ति के द्वारा देखकर पुनः नवीन सृष्टि की रचना आरम्भ कर दिया।

अतः तप ही मानव जीवन की समस्याओं का एक मात्र समाधान है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक जिसने भी जो कुछ प्राप्त किया है वह एक मात्र तप के द्वारा। अब यहाँ तप क्या है, तप किसे कहा जाय, तप की क्या परिभाषा है, यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। उत्तर में यद्यपि आचार्यों ने तप की बहुत सी परिभाषाएँ हमें दिया

हैं परन्तु महा विस्तार के भय से थोड़े में ही बताने का प्रयास कर रहा हूँ।

तप की परिभाषा है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति तक साधना के पथ में जो भी कठिनाइयाँ उपस्थित हों दृढ़ता पूर्वक उनका सामना करना और तब तक साधना में लगे रहना चाहिए जब तक अपना लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।

अतः अब आइये अपने पूर्व प्रसंग पर। यहाँ पति के रूप में शिव की प्राप्ति ही उमा का लक्ष्य है और वह तपस्या के बिना सम्भव नहीं है। इसलिये माता-पिता को सब प्रकार से समझा कर तपस्या करने के लिये उमा चल पड़ीं।

चौ०—मातु पितहिं बहु बिधि समझाई, चली उमा तप हित हरषाई।

प्रिय परिवार और माता-पिता उस समय व्याकुल हो उठे। किसी से कुछ कहते नहीं बन रहा है। तब वेदशिरः मुनि ने आकर सबको समझाया और पार्वती की महिमा सुनाया जिससे सबको शान्ति मिली।

दो०—वेदशिरा मुनि आइ तब, सबहिं कहा समुझाइ।
पार्वती महिमा सुनत, रह प्रबोधहि पाइ॥ (१।७३)

उमा बन में आकर प्राणपति भगवान शिव के चरणों को हृदय में रखकर तपस्या करने लगीं। यद्यपि पार्वती अति सुकुमारी हैं तथा उनका शरीर तप करने योग्य नहीं है फिर भी पति शिव के चरणों का स्मरण करके सभी भोगों को त्याग दिया। संसार के सभी भोग वस्तुओं से मन के विरत हो जाने के कारण शिव के चरणों में नित नवीन अनुराग उत्पन्न होने लगा जिससे कि पार्वती शरीर के धर्म से ऊपर उठकर तपस्या में लीन हो गईं और अब तपस्या का क्रम आरम्भ होता है। प्रथम एक हजार वर्ष तक कन्द मूल फल खाकर और एक सौ वर्ष तक साग खाकर तपस्या किया। पुनः कुछ दिन तक अर्थात दस वर्ष तक जल और वायु पीकर तपस्या किया और फिर एक वर्ष तक बिना जल और वायु के कठिन तपस्या किया। फिर भी जब कार्य सिद्ध नहीं हुआ तब तीन हजार वर्ष तक सूखे बेलपत्र खाकर तपस्या किया और अन्त में सूखे बेलपत्र भी खाना छोड़कर तीन सौ वर्ष तक कठिन तपस्या किया। तब से उमा अपर्णा नाम से भी प्रसिद्ध हुईं। पर्णा का अर्थ है पत्ता। पार्वती सूखे बेलपत्र खाकर तपस्या कर रही थी परन्तु उसे भी तीन सौ वर्ष तक छोड़ दिया इसलिये अपर्णा नाम से प्रसिद्ध हुईं।

चौ०—सम्वत सहस मूल फल खाए, शाक खाय शत वर्ष गवाएं।
कुछ दिन भोजन वारिबतासा, किये कठिन कछु दिन उपवासा।
बेलपात महि परइ सुखाई, तीन सहस्त्र संवत सो खाई।
पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना, उमा नाम तब भयेउ अपरना।

यहाँ उमा ने रुद्री के नियम से पाँच रुद्री तपस्या किया है। ग्यारह की संख्या को रुद्री कहा जाता है। प्रथम एक हजार वर्ष तक कन्द मूल फल खाकर और एक सौ वर्ष तक शाक खाकर यह ग्यारह सौ वर्ष की एक रुद्री पूरी हुई। हजार का दसवां हिस्सा सौ होता है और सौ का दसवां हिस्सा दस होता है इसलिये 'कछु दिन भोजन वारिबतासा' का अर्थ है

दस वर्ष, अर्थात दस वर्ष तक पार्वती ने हवा और पानी पीकर और दस का दसवां हिस्सा एक होता है इसलिए एक वर्ष तक हवा पानी के बिना तप किया। यह ग्यारह वर्ष की दूसरी रुद्री पूरी हो गई। फिर भी जब कार्य सिद्ध नहीं हुआ तब पार्वती ने तीन हजार वर्ष तक सूखे बेल पत्र खाकर और तीन हजार का दसवा हिस्सा तीन सौ वर्ष तक सूखे बेल पत्र को भी खाना छोड़ दिया और तपस्या किया।

रुद्री के क्रम से पार्वती के तपस्या करने का अभिप्राय यह था कि रुद्र ग्यारह होते हैं इसलिये ग्यारह रुद्रों को प्रसन्न करने के लिए पार्वती ने पाँच रुद्री तपस्या किया।

इस प्रकार जिनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो चुका है ऐसी पार्वती को कठोर तपस्या करती हुई देखकर ब्रह्म श्रीराम ने आकाश वाणी किया—हे गिरिराज की बेटी सुनो तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ। दुसह क्लेश रूपी तपस्या जो कर रही हो उससे निवृत हो जाओ। अब त्रिपुरारि अवश्य मिलेंगे।

दो०—भयउ मनोरथ सफल तब, सुनु गिरिराज कुमारि।
परिहरि दुसह क्लेश सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥ (१।७४)

यहाँ ब्रह्म श्रीराम ने ही आकाश वाणी के द्वारा पार्वती को वरदान दिया है क्योंकि जिस पद के लिये पार्वती तपस्या कर रही थी वह पद ब्रह्मा के पद से श्रेष्ठ है इसलिये उसमें ब्रह्मा को हेर-फेर करने का कोई अधिकार नहीं है। साथ ही शरीर त्यागते समय या उससे पूर्व सती ने भगवान श्रीराम से ही यह वरदान माँगी थी कि जहाँ भी मैं जन्म लूं पुनः भगवान शंकर को ही पति के रूप में प्राप्त करूँ इसलिये वही सती जो इस समय पार्वती के रूप में तपस्या कर रही थी, उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर श्रीराम ने ही वरदान दिया। परन्तु ब्रह्म श्रीराम के आकाश वाणी के द्वारा वरदान दे चुकने पर पुनः ब्रह्मा जी आकाश वाणी के द्वारा ब्रह्म वाणी की व्याख्या करते हुए कहने लगे हे भवानी! ऐसा तप अब तक किसी ने नहीं किया यद्यपि बड़े-बड़े धीरमुनि ज्ञानी हो चुके हैं।

अब ब्रह्म वाणी जो सदा सत्य एवं परम पवित्र है उसे हृदय में धारण करो अर्थात् उस पर विश्वास करो। अभी कुछ समय के बाद ही तुम्हारे पिता तुमको बुलाने के लिये आवेंगे तब तुम अपना यह तप रूपी हठ को छोड़ कर घर चली जाना, अब हठ नहीं करना, तुम्हारी तपस्या पूरी हो चुकी हैं, तुम सफल मनोरथा हो चुकी हो। इसका एक लक्षण मैं तुमको बताता हूँ। जब तुमको सप्त ऋषि लोग मिलें तब समझ जाना ब्रह्म वाणी के प्रसाद से ही प्रेरित होकर तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये शिव ने उन्हें भेजा है। प्रशंसा से युक्त ब्रह्म की आकाश वाणी सुनकर गिरिजा का शरीर पुलकित हो उठा और हृदय हर्ष से भर गया।

अब गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि उमा का सुन्दर चरित्र मैंने गाकर सुनाया। अब भगवान शंकर का सुन्दर चरित्र सुने—

चौ०—उमाचरित सुन्दर में गावा, सुनहु शम्भु कर चरित सुहावा।

जब से सती ने अपने पिता के यज्ञ में जाकर शरीर त्याग दिया तब से शिव के मन में विराग हो गया। सती के वियोग से अब भगवान शिव के लिये कैलाश नीरस सा हो गया है। इसलिये अब सदैव रामनाम जपते हैं और यत्र-तत्र श्रीराम कथा को सुनाते हैं। सच्चि-

दानन्द सुख के धाम शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप मोह मद और काम से जिनका मन विरत हो गया है, ऐसे भगवान शंकर समस्त लोकों को विश्राम देने वाले श्री हरि को हृदय में धारण करके पृथ्वी पर विचरण करने लगे। कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते हैं तो कहीं श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हैं। यद्यपि आप अकाम हैं अर्थात् आपके मन में कोई भी कामना शेष नहीं है फिर भी आप भगवान हैं, इसलिये भक्त विरह जन्य दुख से दुखित हैं, सुजान हैं, भक्त हृदय की व्यथा को जानते हैं।

यहाँ ग्रन्थकार ने उमा एवं भगवान शंकर दोनों के चरित्र को सुन्दर कहा। दोनों ही अपने-अपने चरित्र बल में एक दूसरे से बढ़ करके हैं। सती के द्वारा थोड़ी सी भूल हो जाने पर भगवान शिव ने अपने चरित्र बल की उच्चतम परीक्षा देते हुए सती का त्याग कर दिया और वह त्याग साधारण नहीं था। यह कोई साधारण चरित्र बल का चमत्कार नहीं था। ऐसा तो कोई महान चरित्रवान शंकर जैसा ही महापुरुष कर सकता है। साधारण मानव तो इससे विपरीत ही आचरण करते देखे जाते हैं। स्त्री पुत्रादिकों के मोह में बँध जाने के कारण उनमें बड़े-बड़े चारित्रिक दोष पाए जाते हैं।

दूसरी ओर सती ने भी अपने चारित्रिक बल की साधारण परीक्षा नहीं दिया है। पति के द्वारा त्याग देने पर अपने सती नाम को सार्थक करते हुए, (सती का अर्थ है पति-व्रता) पिता दक्ष के यज्ञ में पति शिव का अपमान देखते ही जिनका हृदय संतप्त हो उठा ऐसी सती भगवान श्रीहरि से यह वरदान माँग कर कि मैं जहाँ भी जन्म लूँ शिव ही मेरे पति हों एवम् चन्द्रमा जिनके ललाट पर सुशोभित हो रहा है ऐसे शिव के चरणों को हृदय में रख कर क्षण मात्र में अपने प्रिय शरीर का त्याग कर दिया और पुनः पार्वती के रूप में जन्म लेकर भगवान शिव को ही पति के रूप में प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या किया। यह है उमा का सुन्दर चरित्र--

अब पुनः शिव के सुन्दर चरित्र कहते हैं। यद्यपि आप सच्चिदानन्द हैं, सुख के धाम हैं, कल्याण स्वरूप शिव हैं, मोह मद काम से रहित हैं तथापि सती वियोग से उत्पन्न दुख से अत्यन्त दुखी हैं। जहाँ एक ओर सती से भूल हो जाने के कारण सती को त्याग कर आपने त्याग बल अर्थात् चरित्र बल का एक अद्वितीय आदर्श उपस्थित किया वहीं दूसरी ओर सती वियोगजन्य दुख से दुखी होकर सती जैसी पत्नी में अनन्य प्रेम होने की परीक्षा दे रहे हैं। यही चरित्रवान होने का सबसे बड़ा प्रमाण है।

अब इस प्रसंग का दूसरा पक्ष है 'कतहुँ रामगुण करहि बखाना'

रामगुण बखान का अर्थ है श्रीराम चरित्र का बखान सुनाना। इससे पूर्व भगवान शिव के द्वारा कहीं भी श्रीराम चरित्र सुनाने का प्रसंग नहीं मिलता है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि इसी समय सती के वियोग से उत्पन्न विरह रूपी मंदराचल ने भगवान शिव के हृदय रूपी समुद्र का मंथन किया है जिससे कि श्रीराम चरित्र रूपी अमृत प्रगट हुआ अर्थात् इसी समय भगवान ने श्रीराम चरित्र मानस की रचना किया। प्रथम ज्ञानोपदेश के द्वारा मुनियों के हृदय को पात्र बनाया और तब श्रीराम चरित्र सुनाया।

चौ०—कतहुं मुनिन उपदेसहिं ज्ञाना, कतहुं रामगुन करहिं बखाना,
यहि विधि गयउ काल बहु बीती, नित नै होइ राम पद प्रीती।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया नित्य नवीन प्रीति श्रीराम के चरणों में बढ़ती गई, पति के रूप में शिव मिलेंगे ऐसा वरदान श्रीराम उमा को दे चुके हैं। अतः श्रीराम ने बिचार किया कि यद्यपि मेरी वाणी अमोघ है इसलिये पति के रूप में शिव की प्राप्ति उमा को अवश्य होगी तथापि शिव मेरे अनन्य भक्त हैं और मैं भक्त के अधीन हूँ। इसलिये अनन्य भक्त शिव को मनाने के लिये मुझे स्वयं शिव के समीप जाना पड़ेगा।

चौ०—नेम प्रेम शंकर कर देखा, अविचल हृदय भगति की रेखा।
प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला, रूप शील निज तेज विशाला।

नियम और प्रेम से युक्त अविचल हृदय, जो हृदय कभी विचलित न हो, ऐसे हृदय में भक्ति को देखकर अथवा हृदय में अविचल भक्ति को देखकर रूप और शील के खजाना, कृतज्ञ अपने सेवक की तुच्छ सेवा को बड़ी सेवा मान लेने वाले एवं जिनका विशाल तेज है ऐसे कृपालु श्रीराम प्रगट हो गए और बहुत प्रकार से श्रीराम शंकर की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि तुम्हारे बिना ऐसा कठिन व्रत का पालन भला कौन कर सकता है। इस तरह श्रीराम ने बहुत प्रकार से भगवान शिव को समझाया।

उसके बाद पार्वती के जन्म से लेकर तपस्या तक की अति पुनीत करनी जो साधारणतया कोई नहीं कर सकता है कृपानिधि श्रीराम ने विस्तार के सहित वर्णन किया और प्रार्थना करते हुए कहा कि हे शिव! यदि मुझ पर आपका स्नेह है तो मैं आपसे यह भिक्षा माँगता हूँ कि शैलजा अर्थात् पार्वती से जाकर विवाह कर लें।

दो०—अब विनती मम सुनहु शिव, जो मो पर निज नेहु।
जाय विवाहहु शैलजहिं, यह मोंहि मागे देहु॥ (१।७६)

अस्तु जब भगवान शिव ने यह देखा कि मेरे इष्ट देव की यही इच्छा है कि मैं विवाह कर लूँ तब शिव ने स्वीकार करते हुए कहा कि हे नाथ! यद्यपि यह उचित तो नहीं है कि मैं पुनः विवाह करूँ तथापि आप मेरे स्वामी हैं। आपकी आज्ञा का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता इसलिये आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। यही मेरा परम धर्म है कि मैं आपकी इच्छा के अनुसार चलूँ क्योंकि माता-पिता गुरू स्वामी की आज्ञा का पालन बिना बिचारे ही करना चाहिए और आप मेरे सर्वस्व हैं, इष्टदेव हैं, स्वामी हैं, इसलिये मैं आपकी आज्ञा का पालन अश्वमेव करूँगा।

इस प्रसंग में प्रथम श्रीराम मित्र बन करके आए और शिव एवं पार्वती की प्रशंसा की। यह है सख्य भाव। उसके बाद शिव से प्रार्थना करते हुए कहा कि मैं आपसे यह भिक्षा माँगता हूँ कि आप पार्वती से विवाह कर लें। यह है वात्सल्य भाव। क्योंकि इसमें इष्टदेव स्वयं याचक बने हुए हैं और अन्त में शिव ने श्रीराम को अपना स्वामी माना है। यह है दास्य भाव। भगवान शंकर इन्हीं, सख्य, वात्सल्य और दास्य तीनों विधियों से श्रीराम की उपासना करते हैं। इसलिये यहाँ भगवान शंकर को तीनों रूपों में इष्टदेव का दर्शन हुआ।

इससे यह जानना चाहिए कि हम अपनी रुचि के अनुसार जिस रूप से या जिस भाव से भगवान श्रीराम की उपासना करेंगे उसी रूप से श्रीराम दर्शन देकर हमें सनाथ कर देंगे। इसलिये जिस किसी भी रूप में यह जीव भगवान का भजन करे तो अवश्यमेव कल्याण होगा।

चौ०—प्रभु तोषेउ सुनि शंकर बचना, भक्ति बिबेक धर्म युत रचना।

शंकर का वचन जो भक्ति, विवेक और धर्म से युक्त था सुनकर प्रभु संतुष्ट हुए और प्रभु ने कहा कि हे हर! तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब जो कुछ मैंने कहा है उसे ध्यान में रखना। ऐसा कह कर श्रीराम अन्तर्ध्यान हो गए। यहाँ प्रभु का अर्थ है—सर्व समर्थ जो सब कुछ करने में समर्थ हों ऐसे सर्व समर्थ प्रभु श्रीराम ने जिस प्रकार नम्रता से शिव से बातचीत किया और शादी के लिये अनुरोध किया है, इससे यह जानना चाहिए कि जो जितना शक्तिशाली होता है वह उतना ही नम्र होता है। इसका अनेक उदाहरण मानस में है जैसे मिथिला में परशुराम से बातचीत करते हुए कहा तो एक ओर परशुराम हाथ में फरसा उठाये हुए गालियाँ बक रहे हैं और श्रीराम सिर झुकाये हुए मुस्करा रहे हैं।

चौ०—भृगुपति वकहिं कुठार उठाए, मन मुसकाहिं राम सिर नाए।

दूसरा उदाहरण लंका के युद्ध में जब कि गरजता हुआ एवम् गालियाँ देता हुआ रावण श्रीराम के सम्मुख उपस्थित होता है और कहता है कि ऐ तपस्वी राम! अब तक जिन वीरों को तुमने युद्ध में जीता है वैसा मैं नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है। सारा संसार मुझे जानता है। बड़े-बड़े लोक-पाल मेरे बन्दीखाने में पड़े हुए हैं। खरदूषण विराध को तुमने मारा और उस गरीब बालि को तुमने व्याध की तरह मारा, बहुत से निशाचर वीरों का तुमने संहार किया, कुंभकर्ण और मेघनाद का तुमने बध किया। आज मैं उन सबों का बदला तुमसे चुकाऊँगा। यदि तुम युद्ध से भाग नहीं गए तो मैं तुम्हारा भी बध कर दूँगा क्योंकि तुम आज कठिन रावण के पाले पड़ गए हो। यह है रावण का मिथ्याभिमान। परन्तु वही अभिमान श्रीराम का स्पर्श तक भी नहीं कर पाता है। बहुत ही नम्रता के साथ क्षमा यचना करते हुए श्रीराम रावण के अहं से युक्त बातों का उत्तर देते हैं कि महाराज! सत्य है कि यह आपका मिथ्याभिमान है। आप जैसे वीरों के लिए यह अशोभनीय बात है कि आप अपनी स्वयं प्रशंसा करें। (लंका काण्ड दोहा नं० ८९ के नीचे)

उपर्युक्त दो उद्धरणों से यह सिद्ध हुआ कि जो जितना शक्ति-शाली होता है वह उतना ही नम्र होता है। यहाँ परशुराम और रावण की अपेक्षा श्रीराम जितने अधिक शक्तिशाली हैं उतना नम्र भी हैं।

यह था प्रभु सम्बोधन करने का अभिप्राय। अब दूसरा पक्ष है भक्ति, विवेक और धर्म से युक्त शिव की वाणी जिसे सुनकर प्रभु श्रीराम संतुष्ट हुए। इसका अभिप्राय है कि भक्त भगवती भक्ति की कृपा से सर्व शक्तिमान प्रभु अर्थात ईश्वर की समानता को प्राप्त कर लेता है। वे समस्त ईश्वरीय गुण जिनके द्वारा ईश्वर जीवों का कल्याण करते हैं भक्त में प्रगट हो जाता है। यही है ईश्वर की समानता को प्राप्त हो जाना।

यहाँ श्रीराम और शिव।दोनों ने ही एक दूसरे के साथ अत्यन्त नम्रता एवम् शिष्टाचार

का व्यवहार किया है और हमें यह शिक्षा दिया है कि बड़े छोटे के साथ और छोटे अपने से बड़े के साथ कैसा व्यवहार करे।

चौ०—तबहिं सप्तऋषि शिव पहिं आए, बोले प्रभु अति बचन सुहाए।

तब जबकि श्रीराम शिव से बातचीत करके चले गए उसी समय सप्त-ऋषि लोग भगवान शंकर के पास आए। सप्त ऋषियों को देखकर शिव ने कहा कि आप लोग पार्वती के पास जाकर पार्वती की प्रेम की परीक्षा लीजिये और महाराज हिमांचल को प्रेरित करिये जिससे वे पार्वती को घर लिवा लाएँ।

दो०—पारबती पहिं जाइ तुम, प्रेम परीक्षा लेहु।
गिरिह प्रेरि पठवहु भवन दूरि करहुँ संदेह ।। (१।७७)

इस दोहे में प्रेम की परीचा लेने की बात कही गई है इसका दो अभिप्राय है। प्रथम तो यह कि पार्वती मुझमें अनन्य भाव से प्रेम करती है कि नहीं। अनन्य भाव का अर्थ है—अन्य आश्रय विहीन, मन, वचन, कर्म से अपने आराध्य में एकनिष्ठ हो जाना जैसे चातक स्वाती नक्षत्र के बादल में एक निष्ठ है। सदैव रटता रहता है पिया कहाँ! पिया कहाँ!! स्वाती नचत्र में कभी-कभी वर्षा नहीं होती है फिर भी बड़े-बड़े सरोवर एवम् नदियों के जल को चातक नहीं पीता है। जब भी पीता है तो स्वाती का ही जल पीता हैं जैसे चकोर अपने प्रियतम चन्द्रमा में एक निष्ठ है, अपने शरीर के सुध-बुध को भूल कर प्रियतम चन्द्रमा को टकटकी बाँध कर देखता रहता है। इसे ही कहते हैं अनन्य भाव से प्रेम करना। अतः पार्वती मुझ से अनन्य प्रेम करती हैं या नहीं।

दूसरा-यदि पार्वती मुझमें अनन्य भाव से प्रेम करती हैं तो वह विशुद्ध प्रेम है या नहीं? यहाँ विशुद्ध प्रेम कहने का मेरा अभिप्राय यह है कि काम और प्रेम की सभी वाह्य चेष्टाएँ एक जैसी ही होती हैं। इसलिये वाह्य क्रिया कलापों को देखकर यह निश्चय करना बहुत ही कठिन होता है कि यह प्रेम है या काम है। प्रेम और काम का भेद तो अन्तरंग मन की स्थिति के द्वारा ही किया जा सकता है। प्रेम उसे कहते हैं जिसमें त्वदीय सुख की भावना हो और काम उसे कहते हैं जिसमें स्वकीय सुख की भावना हो। जो दूसरों को सुख देने की इच्छा से प्रेम किया जाय वह प्रेम है और जो अपने सुख की इच्छा से प्रेम किया जाय वह काम है। प्रेम में त्याग की प्रधानता होती है और काम में लोभ की प्रधानता होती है। प्रेम में देने की इच्छा सदा बनी रहती है जबकि काम में लेने की इच्छा बनी रहती है। जैसे माँ भी अपने नवजात बालक को प्यार करती है और पति भी अपनी नवविवाहिता पत्नी को प्यार करता है परन्तु माँ के मन में त्वदीय सुख की भावना होती है अर्थात् माँ अपने उस नवजात बालक को सुख पहुँचाने की इच्छा से प्यार करती है इसलिये वह प्रेम है और पति अपने निजी सुख के लिये अपनी नवविवाहिता पत्नी को प्यार करता है इसलिये वह काम है। इसलिए भारतीय संस्कृति में पति पत्नी के प्रेम की आधार शिला के रूप में धर्म को रखा गया है। जैसे जिस भवन की आधार शिला जितनी दृढ़ होती है वह भवन उतना ही टिकाऊ होता है। इसलिये वेद मन्त्रों के द्वारा अग्नि के साक्षी में धर्म पूर्वक पति-पत्नी का संबंध स्थापित किया जाता है जिससे कि वह संबंध जन्म-जन्मान्तर तक बना रहे, क्योंकि उपर्युक्त

माप दण्डों के अनुसार धर्म से रहित पति पत्नी के प्रेम को सम्भवतः प्रेम नहीं कहा जा सकता है और प्रेम को ही हम ईश्वर का स्वरूप कह सकते हैं, काम को नहीं। अन्त में मैं यह कहूँगा कि प्रेम आत्मा है तो धर्म उसका शरीर है। प्रेम बिम्ब है तो धर्म उसका प्रतिबिम्ब है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब एक दूसरे से अलग नहीं रह सकता है वैसे ही प्रेम और धर्म एक दूसरे से अलग नहीं रह सकता है। जैसे प्रतिबिम्ब बिम्ब का ही अनुसरण करता है वैसे ही धर्म सदैव प्रेम का अनुसरण करता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि प्रेम का धर्म त्याग ही है अन्य कुछ नहीं।

इसलिये भगवान शंकर ने तप और त्याग के मूर्तरूप सप्त ऋषियों को ही पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये भेजा।

चौ०—ऋषिन गौरि देखी तंह कैसी, मूरतिमंत तपस्या जैसी।

ऋषियों ने जाकर पार्वती को देखा। उस समय पार्वती ऐसी लग रही थीं जैसे स्वयं तपस्या ही मूर्त रूप धर कर बैठी हो। समीप में जाकर ऋषियों ने प्रश्न किया कि हे शैल कुमारी! आप इतनी कठिन तपस्या किसलिए कर रही हैं? आप किस देव की आराधना कर रही हैं, और क्या चाहती है? हमसे सत्य कहिये, आपकी क्या इच्छा है?

यहाँ ऋषियों को पार्वती का त्याग और तप को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई क्योंकि यही देखने के लिये और प्रेम की परीक्षा लेने के लिये भगवान शिव ने इन्हें यहाँ भेजा था। सो जैसे देह को देखकर देही आत्मा का बोध होता है वैसे ही पार्वती का तप और त्याग जो प्रेम का शरीर है और प्रेम जिसकी आत्मा है, उसका बोध हुआ फिर भी भगवान शिव की आज्ञा के अनुसार प्रेम की परीक्षा लेने के लिये ऋषियों ने कुछ प्रश्न किया जिसका उत्तर अब पार्वती देती हैं। हे ऋषियों! जो मैं चाहती हूँ उसे कहने में मुझे बड़ा संकोच लग रहा है क्योंकि आप मेरी बातें सुनकर हंसेंगे। क्या करूँ मेरे मन ने तो हठ पकड़ लिया है वह मेरी शिक्षा मानता ही नहीं। मेरे मन का हठ तो देखिये। मेरा मन जल पर दीवाल खड़ा करना चाहता है। नारद जो मेरे गुरू हैं उनकी शिक्षाओं को सत्य मान लिया है और पंख के बिना आकाश में उड़ना चाहता है। हे मुनियों! आप मेरा अज्ञान तो देखिये, मैं शिव को सदा पति के रूप में चाहती हूँ, बस यही मेरा लक्ष्य है।

सप्त ऋषियों को देख कर पार्वती समझ गई थीं कि ये लोग मेरे संकल्प के विरुद्ध कुछ कहेंगें और साथ ही ये लोग पूज्य हैं इनके साथ बाद-विवाद करना भी उचित नहीं इसलिये पार्वती ने ऐसा उत्तर दिया कि मैं जो कुछ कर रही हूँ इसमें मेरी अन्तरात्मा पूर्ण संतुष्ट है। हे ऋषियों! अब इसमें कहने सुनने की कुछ भी गुंजाइश नहीं है अर्थात् अब आप लोग मुझे अपने लक्ष्य से विचलित करने का प्रयास नहीं करेंगे। परन्तु ऋषि लोग तो पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये आए थे इसलिये व्यंगात्मक हँसी उड़ाते हुए बोले।

दो०—सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेउ किस गेह॥ (१७८)

पार्वती के बचनों को सुनकर ऋषि लोग हंसते हुए बोले आखिर यह शरीर तुम्हारा जड़ पहाड़ से ही तो उत्पन्न हुआ है। भला यह बताओ कि नारद के उपदेश सुनकर आज तक किसका घर बसा है। अर्थात् जिसको भी नारद ने उपदेश दिया है उसका घर उजड़

गया है जैसे दक्ष के पुत्रों को जाकर उपदेश दिया वे सब के सब विरक्त हो गये। लौट कर घर नहीं आए। राजा चित्रकेतु को तो ऐसा उपदेश दिया कि उनका घर ही उजड़ गया। हिरणाक्ष्य, हिरण कश्यप को भी नारद ने उपदेश देकर मरवा डाला। इसलिये जो नर नारी नारद का उपदेश सुनेगा वह निश्चय ही घर छोड़कर भिखारी हो जायगा। शरीर में तो नारद ने साधुओं का चिन्ह धारण कर रखा है, परन्तु मन से वह कपटी है। अपना ही जैसा दूसरों को बनाना चाहता है। ऐसे नारद की बातों पर विश्वास करके जो सहज ही उदास हैं ऐसे भगवान शिव को तुम पति बनाना चाह रही हो।

इस प्रसंग में सप्त ऋषियों ने नारद जो पार्वती जी के गुरू हैं उनकी निंदा की है। यद्यपि यहाँ ऋषियों के बचन दो अर्थों वाले हैं। साधारण अर्थ तो जो पार्वती की परीक्षा लेने के लिये कहा गया है उसमें तो नारद की निन्दा की गई है परन्तु विशेष अर्थ के रूप में नारद के विशिष्ट गुणों की प्रशंसा की गई है। नारद के विशिष्ट गुण ये हैं कि 'आप सरिस सबही चह कीन्हा'। इसका अभिप्राय यह है कि नारद मान-अपमान, ठंढी-गर्मी, भूख-प्यास, शत्रु-मित्र, दुख-सुख, जन्म-मृत्यु इन समस्त द्वन्द्वों से ऊपर उठकर, जैसे स्वयं ब्रह्मानन्द में सदा-लीन रहते हैं वैसे ही दूसरों को भी ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कराना चाहते हैं इसलिये नारद ने दक्ष प्रजापति के पुत्रों को और राजा चित्रकेतु आदि को उपदेश देकर ईश्वर के सम्मुख भेज दिया। यही है 'आप सरिस सबहीं चह कीन्हा'।

अब दूसरा पक्ष है जिसमें नारद की निन्दा की गई है। नारद की निंदा ऋषियों ने इसलिये किया कि नारद जी पार्वती जी के गुरु हैं और गुरु के ही उपदेश से सभी सकाम या निष्काम शुभ कर्म आरम्भ होते हैं। जैसे किसी बृक्ष के मूल अर्थात जड़ को काट देने पर शाखा और पत्ते अपने आप सूख जाते हैं वैसे ही गुरु या गुरु के उपदेश में अविश्वास हो जाने पर शिष्य अपने साधन पथ से गिर जाता है। पार्वती अपने साधन पथ पर दृढ़ है या नहीं इसकी परीक्षा लेने के लिये ही ऋषियों ने पार्वती के गुरु नारद की निन्दा की और अब पार्वती के मन में भगवान शंकर के लिये अनन्य प्रेम है या नहीं इसकी परीक्षा लेने के लिये भगवान शिव की निन्दा करने लगे।

चौ०—निर्गुन निलज कुवेष कपाली, अकुल अगेह दिगम्बर व्याली।
कहहु कवन सुख अस वर पाए, भल भूलिहु ठग के बौराए॥

ऋषियों ने कहा कि पार्वती, प्रथम तो नारद का उपदेश कहाँ तक सत्य है इसी में संदेह है और फिर मान लो कि शिव पति के रूप में प्राप्त भी हो गए तो उनसे तुमको क्या सुख मिलेगा क्योंकि शिव तो उदास हैं, निर्गुण हैं, निर्लज्ज हैं, कुवेष हैं, कपाली हैं, अकुल हैं, अगेह हैं, दिगम्बर हैं और व्याली हैं। यह तुम्हारा पागलपन ही तो है कि ऐसे को पति बना कर सुख चाहती हो। ऋषियों के ये बचन भी दो अर्थ वाले हैं। इन बचनों के साधारण अर्थ जो पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये ऋषियों ने कहा है वे अच्छे नहीं है परन्तु विशेष अर्थ जो भगवान शिव की प्रशंसा के रूप में कहे गए हैं वे बहुत ही अच्छे हैं जैसे : उदास— निन्दा के पक्ष में तो इसका अर्थ है अकर्मण्य परन्तु स्तुति के पक्ष में इसका अर्थ है जिसका कोई शत्रु मित्र न हो। निर्गुण—निन्दा के पक्ष में इसका अर्थ है अयोग्य जिसमें कोई गुण न

हो परन्तु प्रशंसा के पक्ष में निर्गुण का अर्थ है त्रिगुणातीत ब्रह्म। इसी प्रकार निर्लज्ज का अर्थ है—जिसमें कोई लाज शर्म न हो परन्तु प्रशंसा के पक्ष में इसका अर्थ है आत्मदर्शी जैसे कुवेष—निन्दा के पक्ष में इसका अर्थ है गरीब परन्तु प्रशंसा के पक्ष में महान बीत रागी पुरुष। जैसे कपाली—निन्दा के पच्च में इसका अर्थ है मसान में रहने वाला अघोरी परन्तु प्रशंसा के पक्ष में इसका अर्थ है ब्रह्म ज्ञानी। जैसे अकुल—निन्दा के पक्ष में इसका अर्थ है जिसके कुल, खानदान में कोई न हो परन्तु प्रशंसा के पक्ष में इसका अर्थ है स्वयम्भू, जो स्वयं प्रगट हुए हों। अगेह—निन्दा के पच्च में जिसके पास रहने के लिये घर भी न हो परन्तु प्रशंसा के पक्ष में जो सबके हृदय में निवास करता हो। दिगम्बर—निन्दा के पक्ष में जो सदा नंगा रहता हो परन्तु प्रशंसा के पक्ष में जो देहाध्यास से ऊपर उठ कर अपने आत्म स्वरूप में स्थित रहता हो। व्याली—निन्दा के पक्ष में साँप नचाने वाला सपेरा परन्तु प्रशंसा के पक्ष में काल का विजेता क्योंकि साँप काल का प्रतीक माना जाता है।

इस प्रकार दो अर्थों से युक्त बचनों के द्वारा जिसमें वाह्य रूप से शिव की निन्दा हो रही है ऋषियों ने और भी आगे कहा कि पार्वती पंच के कहने पर शिव ने सती से विवाह किया परन्तु सती को इतना कष्ट दिया कि सती पिता के यज्ञ में जाकर जल कर मर गई। भव अर्थात शिव अब भिक्षा माँग कर खाते हैं और सुख से सोते हैं क्योंकि अब उन्हें कोई सोच नहीं है ऐसे अकेले रहने की जिन्हें आदत है उस शिव के साथ भला कोई स्त्री कैसे रह सकती है।

दो०—अवहूं मानहु कहा हमारा, हम तुम कंह वर नीक विचारा।

आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अब भी हमलोगों की बात मान लो। हम लोगों ने बहुत ही सुन्दर वर के साथ तुम्हारा विवाह कराने का विचार किया है। वे अति सुन्दर हैं, सुख देने वाले हैं, सुशील हैं, वेद जिनके यश और लीलाओं को गाते है, जो सभी दोषों से रहित हैं और सभी गुणों के भण्डार हैं, लक्ष्मी के पति है और बैकुंठ धाम के निवासी हैं। ऐसे वर अर्थात् भगवान विष्णु के साथ हम लोग तुम्हारा विवाह करा सकते हैं यदि तुम हम लोगों की बात मान लो।

इस प्रसंग में ऋषियों ने भगवान विष्णु की प्रशंसा करते हुए नौ गुणों का वर्णन किया है।

(१) अति सुन्दर (२) पवित्र (३) सुख देने वाले (४) सुशील (५) यश लीला (६) सब दोषों से रहित (७) सभी गुणों के ढेर (८) लक्ष्मी के पति (९) बैकुण्ठ के निवासी।

जब कि भगवान शिव की निन्दा करते हुए ऋषियों ने नौ दुर्गुणों का वर्णन किया है जैसे (१) उदास (२) निर्गुण (३) निर्लज्ज (४) कुवेष (५) कपाली (६) अकुल (७) अगेह (८) दिगम्बर और (९) व्याली।

इसका अभिप्राय यह है कि ९ का अंक सबसे बड़ा होता है। इसलिये जिसमें नौ गुण हो वे सबसे बड़े गुणी और जिसमें नौ दुर्गुण हों वे सबसे बड़े दुर्गुणी। पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये ही ऋषियों ने शिव में नौ दुर्गुणों का वर्णन किया परन्तु पार्वती के मन में तो शिव के लिये अगाध प्रेम है इसलिये ऋषियों की बातें सुनकर पार्वती हँसती हुई बोलीं।

चौ०—सत्य कहेहु गिरि भव तन एहा, हठ न छूट छूटे वरु देहा।

ऋषियों ! आप लोग तो आप्त पुरुष हैं। आप कभी असत्य नहीं बोल सकते हैं। आप लोगों ने तो पहले ही कहा है और वह सत्य कहा है कि मेरा शरीर जड़ पहाड़ से उत्पन्न हुआ है। इसलिये मेरा शरीर भले ही छूट जाय लेकिन मेरा दृढ़ नहीं छूट सकता है जैसे सोना पत्थर से पैदा होता है, इसलिये जलाने पर भी वह अपना रंग नहीं छोड़ता है। उसी प्रकार मैं भी जड़ पहाड़ से पैदा हुई हूँ। (पहाड़ में जन्म होने से पहाड़ जैसी दृढ़ स्वभाव वाली) इसलिये जो एक बार निश्चय कर लिया वह नहीं बदल सकता है।

यहाँ पार्वती ने इस अपने चरित्र से साधकों को साधन पथ पर दृढ़ होने की शिक्षा दिया है क्योंकि जब तक साधक अपनी साधना के पक्ष पर दृढ़ नहीं है तब तक उसे कभी भी सफलता नहीं मिल सकती है। बार-बार अपनी साधना पथ को बदल देना यह साधना का व्यभिचार माना जाता है। इसलिये साधक को बहुत ही सोच समझ कर किसी साधना पथ पर चलना चाहिये और एक बार चल पड़ने के बाद चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न उपस्थित हों साधक को दृढ़तापूर्वक अपने पथ पर चलते रहना चाहिए और उसे कभी भूल कर भी बदलना नहीं चाहिए। ठीक इसी प्रकार बहुत ही सोच समझ कर किसी महापुरुष को गुरु बनाना चाहिये। यहाँ सोचने समझने का अर्थ है जिस महापुरुष के आगे हृदय झुक जाय। (गुरू बनाना चाहिए) एक बार गुरू बना लेने के बाद यथा सम्भव उसको बदलना नहीं चाहिए क्योंकि एक बार गुरू में या गुरू वाक्य में अविश्वास हो जाने पर साधक अपने साधना पथ से गिर जाता है और दुबारा उस पथ पर फिर कभी नहीं चल पाता है। गुरू का जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान है अब उसे पार्वती कहती हैं।

चौ०—नारद बचन न मैं परिहरऊँ, बसै भवन उजरै नहि डरऊँ।
गुरू के बचन प्रतीत न जेही, सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही।

मेरा घर बसे या उजड़ जाय इसकी मुझे चिन्ता नहीं परन्तु नारद जी का बचन मैं नहीं छोड़ सकती हूँ क्योंकि नारद जी मेरे गुरु हैं। गुरू के बचन पर जिसको विश्वास नहीं है वह सपने में भी सुख और सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है। इस उपर्युक्त पार्वती के कथन से यह जानना चाहिए कि इस मानव जीवन में गुरू से बढ़कर किसी दूसरे का स्थान नहीं है।

यह गुरू नाम महामन्त्र दो अक्षरों से बनता है गु और रु 'गु' का अर्थ है अन्धकार और 'रु' का अर्थ है प्रकाश अर्थात् जो अन्धकार से प्रकाश में ले जाय उसे गुरू कहते हैं। अन्धकार का अर्थ है मृत्यु और प्रकाश का अर्थ है अमृत—जो मृत्यु से छुड़ाकर अमृत की प्राप्ति करावे उसे गुरू कहते हैं और यह अधिकार ईश्वर ने एकमात्र गुरू को ही दिया है किसी दूसरे को नहीं। गुरू कृपा से ही जीव मृत्यु से छूट कर अमृत को प्राप्त कर सकता हैं और दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह ध्रुव सत्य है। गुरू, कृपा के बिना जीव कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है, चाहे वह ब्रह्मा और शिव के समान क्यों न हो जाय।

योग के क्षेत्र में भी आज्ञा चक्र के स्वामी गुरू ही होते हैं। इसलिये बिना गुरू कृपा से कोई भी जीव उस आज्ञा चक्र में प्रवेश नहीं कर सकता है। इस शरीर में ६ चक्र होते हैं। (१) मूलाधार चक्र (२) स्वाधिष्ठान चक्र (३) मणिपूरक चक्र (४) विशुद्धि चक्र (५) अनाहद

चक्र और (६) आज्ञा चक्र। इनके क्रम से गणेश, ब्रह्मा, आदि देवता होते हैं। इनमें सबसे अन्त में आज्ञा चक्र के स्वामी गुरू ही माने जाते हैं। मृत्यु के समय में प्रत्येक जीव को क्रम से इन छहों चक्रों में प्रवेश करने के लिये संघर्ष अर्थात् युद्ध करना पड़ता है परन्तु मरने वाले जीवों की तीन श्रेणियाँ होती हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इन्हीं तीनों प्रकार के जीवों को गोस्वामी तुलसीदास ने सिद्ध, साधक और विषयी जीव कहा है :—

चौं०—विषयी साधक सिद्ध सयाने, त्रिविधि जीव जग वेद बखाने।

इन्हीं को आप इन नामों से भी जान सकते हैं :—

मुक्तात्मा, पुण्यात्मा और पापात्मा ! इनमें से पापात्मा अर्थात् अधम जीव मूलाधार चक्र को ही नहीं पार कर पाता है क्योंकि प्रथम चक्र मूलाधार में मृत्यु के समय में जीव को प्रबल संघर्ष करना पड़ता है। इसलिये पापी जीव अर्थात् निर्बल आत्मा मूलाधार चक्र को ही नहीं पार कर पाता है और अत्यधिक घबड़ाहट में मल-मूत्र के मार्ग से ही शरीर के बाहर निकल जाता है ऐसे जीव को नर्क की प्राप्ति होती है। और नर्क के बाद पशु-पक्षी योनियों को प्राप्त करता है।

अब मध्यम अर्थात् पुण्यात्मा जीव मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, विशुद्धि, अनाहद इन चक्रों को पार कर लेता है परन्तु वह भी आज्ञा चक्र को नहीं पार कर सकता है क्योंकि आज्ञा चक्र को पार करने के लिये जीव को सबसे प्रबल संघर्ष करना पड़ता है। आज्ञाचक्र में बहुत ही सुदृढ़ बज्र के दरवाजे लगे हुए हैं और दो बहुत ही प्रबल पहरेदार भी हैं जिन्हें मानस में जय और विजय के नाम से कहा गया है। आज्ञाचक्र में प्रवेश करने के लिये इन्हीं दो पहरेदारों से जीव को युद्ध करना पड़ता है। इन दोनों से विजयी होने के बाद ही जीव अपनी आगे की यात्रा आरम्भ कर सकता है परन्तु करोड़ों पुण्यात्मा जीव इनसे युद्ध में पराजित होकर आँख, नाक, कान या मुख के मार्ग से शरीर के बाहर निकल जाता है। ऐसे जीवों को मध्य लोक अर्थात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है और स्वर्ग के बाद पुनः मनुष्य शरीर प्राप्त करके फिर से अपनी साधना आरम्भ करता है।

इस प्रकार अनन्त जन्म साधना करने के बाद वह पुण्यात्मा जीव मुक्तात्मा की अवस्था को प्राप्त करता है और तब जाकर कहीं गुरू की असीम कृपा से वह मुक्तात्मा जीव उन दोनों प्रबल पहरेदारों से युद्ध में विजयी होकर बज्र के दरवाजे को खोल कर आज्ञा चक्र में प्रवेश कर पाता है। मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि इस आज्ञा चक्र का मालिक गुरू है और बिना गुरू कृपा से वह जीव चाहे ब्रह्मा और शिव के समान क्यों न हो जाय आज्ञा चक्र में प्रवेश नहीं कर सकता है। और यह आज्ञा चक्र ही परमधाम का अन्तिम द्वार है इसको पार कर लेने के बाद जीव परम धाम में पहुँच जाता है।

इसलिये पार्वती जी कहती है कि ऐसे गुरू के वचनों पर जो विश्वास नहीं करता है भला वह कैसे सुख और सिद्धि को प्राप्त कर सकता है ?

इस प्रकार पार्वती जी ने अपने धर्म के मूल की रक्षा किया क्योंकि सप्त ऋषियों का प्रथम प्रहार पार्वती जी के गुरू नारद ही पर था और गुरू ही समस्त आध्यात्मिक साधनों के

मूल होते हैं। अब दूसरा प्रहार सप्त ऋषियों ने पार्वती के भावी पति भगवान शंकर पर किया था।

पार्वती अब उसका उत्तर देती हैं :—

दोहा०—महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुणधाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ॥ (१।८०)

महादेव अवगुणों के भवन हैं और विष्णु गुणों के धाम हैं परन्तु जिसका मन जिसमें रम गया है उसके लिये वही सर्वस्व है। हे मुनियों! यदि आप पहले मिले होते तो मैं आपकी शिक्षाओं को ही शिरोधार्य करती परन्तु अब तो मैंने अपना जीवन भगवान शिव को सौंप दिया है। इसलिये उनके गुण दोषों का विचार कौन करें। यदि आपने शादी कराने का ही हठ कर रखा है और बिना शादी कराए आपसे रहा नहीं जाता है तो संसार में वर-कन्याओं की कमी नहीं है। इसलिये आप कहीं अन्यत्र जायँ। यहाँ अब कोई गुंजाइश नहीं है। मैं करोड़ों जन्म तपस्या करती रहूँगी। या तो भगवान शंकर से विवाह करूँगी या कुमारी रहूँगी।

इस मानव-जीवन में चाहे वह पुरुष हो चाहे स्त्री आत्मिक दृष्टि से गुरू का प्रथम स्थान है और गुरू के बाद ब्रह्म वादियों ने दूसरा स्थान पति को दिया है। इस भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के लिये पति का स्थान भी महत्वपूर्ण माना जाता है। यद्यपि गुरू और शिष्य के संबंध की तरह से पति पत्नी का संबंध सनातन तो नहीं कहा जा सकता है तथापि यदि पति-पत्नी के विचार एक हों तो बहुत जन्मों तक बना रहता है। इसलिये पतिव्रत धर्म में पति भी पतिव्रता स्त्री के लिये ईश्वर के समान पूज्य है। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि पतिव्रता को किसी अन्य की पूजा नहीं करनी चाहिये। यथार्थ तो यह है कि प्राणी मात्र का एक मात्र पति ईश्वर है। इसलिये चाहे वह साधारण स्त्री हो चाहे वह पतिव्रता स्त्री हो, प्राणी मात्र का यह परम कर्त्तव्य होता है कि वह ईश्वर या ईश्वर के प्रतिनिधि गुरु की पूजा करे। पति पूजा अर्थात पति में अनन्य भाव से प्रेम करें, भारतीय संस्कृति में नारी का यह परम कर्त्तव्य माना गया है। जैसा कि स्वयम् पार्वती अपने पति शिव में अनन्य भाव से प्रेम करती हैं। इसलिये ऋषियों के द्वारा, जो पार्वती के पति-प्रेम की परीक्षा लेने के लिये आए थे, की गई शिव की निन्दा के उत्तर में पार्वती जी कहती हैं कि हे ऋषियों! आपके कथनानुसार यद्यपि भगवान विष्णु समस्त गुणों के धाम हैं और भगवान शंकर अवगुणों के घर हैं परन्तु मैंने तो अपने गुरु नारद के उपदेशानुसार भगवान शिव को अपना पति मानकर आत्म समर्पण कर दिया है। इसलिये अब उनके गुण-दोषों का विचार करना भी मेरे लिये उचित नहीं है परन्तु पति तभी तक पूज्य है जब तक कि पति गुरु को विरोध नहीं करता है। यदि पति गुरु का विरोध करने लग जाय तो चाहे वह साधारण नारी हो या पतिव्रता नारी हो उसे गुरु का ही पक्ष लेना चाहिए क्योंकि पति शरीर का रक्षक है जबकि गुरु आत्मा का रक्षक है। पति शब्द का अर्थ है पालन करने वाला जैसे पति इस भौतिक जगत में भोजन, वस्त्रादिकों से अथवा अन्य दुष्ट पुरुषों से अपनी पत्नी के शरीर की रक्षा करता है वैसे ही गुरु ज्ञान, वैराग्य, भक्ति के द्वारा आत्मा की रक्षा करता है। पति का

सम्बन्ध अपनी पत्नी के नाशवान शरीर तक ही सीमित है जब कि गुरु का सम्बन्ध नित्य सनातन आत्मा से जुड़ा हुआ है। इसलिये पति और गुरु में विरोध होने पर गुरु का ही पक्ष लेना चाहिए। जैसा कि स्वयं पार्वती जी जो पतिव्रताओं की गुरु हैं यहाँ कह रही हैं हे ऋषियों! भला आपके कहने से गुरु का उपदेश मैं कैसे छोड़ सकती हूँ यदि स्वयं भगवान शंकर जो मेरे पति हैं एक बार नहीं सौ बार कहें तब भी मैं अपने गुरु का उपदेश नहीं छोड़ सकती।

चौ०—तजुहुँ न नारद कर उपदेशू, आप कहहिं सत बार महेशू।

गुरु श्री नारद जी में एवम् प्रियतम भगवान शिव में पार्वती को एक निष्ठ देख कर ऋषियों को पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ इसलिये भगवती पार्वती के पाद पद्मों की वन्दना करते हुए सप्त ऋषियों ने कहा कि हे जगदम्बे! हम लोग आपके चरणों में प्रणाम करते हुए आपसे आग्रह करते हैं कि आप शीघ्र अपने घर चली जायँ। शिव के लिये पार्वती के मन में अनन्य प्रेम को देखकर मुनि बोले हे भवानी! हे जगदम्बिके!! आपकी जय हो! जय हो!! आप और शिव ही अखिल जगत के माता-पिता हैं। ऐसा कह कर जगदम्बा पार्वती के चरणों में सिर झुका कर बार-बार जिनका मन और शरीर प्रसन्न हो रहा है सप्त ऋषि लोग चल दिये। सर्व प्रथम ऋषियों ने महाराज हिमांचल के पास जाकर उन्हें पार्वती के पास भेजा और प्रार्थना करके पार्वती को घर लिवा लाए।

चौ०—बहुरि सप्त ऋषि शिव पहिं जाई, कथा उमा कै सकल सुनाई।
भए मगन शिव सुनत सनेहा, हरषि सप्तऋषि गवने गेहा।

'बहुरि' अर्थात् हिमांचल को पार्वती के पास भेज कर सप्त ऋषि लोग भगवान शिव के पास पहुँचे और शिव के पास पहुँच कर वे सभी लीलाएँ जो परीक्षा लेने के लिए गए हुए ऋषियों ने पार्वती के जीवन में देखा या पार्वती के मुख से सुना ज्यों की त्यों भगवान शिव को सुना दिया। पार्वती के मन में अपने लिये अनन्य प्रेम जान कर भगवान शिव बहुत ही प्रसन्न हुए। श्रद्धा और विश्वास की मूर्त रूप भगवती पार्वती और भगवान शिव का मिलन कराने का श्रेय ईश्वर ने हम लोगों को ही दिया। ऐसा विचार करके ऋषि लोग प्रसन्न होकर अपने आश्रम को चले गए।

पार्वती मुझमें अनन्य प्रेम करती हैं यह जान कर भगवान शिव को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और पार्वती को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा भगवान शिव के मन में उत्पन्न हुई। इसलिये भगवान शिव अपने मन को स्थिर करके भगवान श्रीराम का ध्यान करने लगे।

इस प्रसंग से यह उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि जब कोई भी जीव ईश्वर में अनन्य भाव से प्रेम करता है तब ईश्वर उस जीव को पाने के लिये लालायित हो उठते हैं। कोई ईश्वर से अनन्य भाव से प्रेम करके तो देखे। जो जीव भगवान से जिस प्रकार का और जितना प्यार करता है तो भगवान भी उस जीव के साथ उसी प्रकार से उससे दुगुना प्यार करते हैं क्योंकि ईश्वर ही जीव के सच्चे सुहृद अर्थात मित्र हैं। ईश्वर तो चाहते हैं कि जीव मेरी ओर देखे और मुझसे प्यार करें परन्तु दुर्भाग्यवश जीव न तो ईश्वर से प्यार करता है

और न तो ईश्वर की ओर देखता है। उसने तो ईश्वर की ओर पीठ कर रखा है और संसार की ओर देख रहा है।

चौ०—मन थिर करि तव शंभु सुजाना, लगे करन रघुनायक ध्याना।
तारक असुर भए तेहि काला, भुज प्रताप वल तेज विशाला।

अस्तु मन को स्थिर करके भगवान शिव इष्टदेव रघुनायक श्रीराम का ध्यान करने लगे। उसी समय तारकासुर नाम का एक असुर पैदा हुआ जिसकी भुजाओं का बल, प्रताप और तेज विशाल था। उसने सभी लोकपालों को जीत लिया। सभी देवता सुख सपत्ति से खाली हो गए। वह असुर अजर अमर था इसलिये देवता युद्ध में जीत नहीं पा रहे थे। सभी देवता अनेकों प्रकार से युद्ध करके उससे हार गए।

इस प्रसंग में तारकासुर का पैदा होना और तारकासुर के द्वारा सभी देवताओं के जीते जाने का अभिप्राय यह है कि तारकासुर का आध्यात्मिक अर्थ है संदेह और देवताओं का अर्थ है सद्‌गुण। जब किसी मनुष्य के हृदय में संदेह उत्पन्न हो जाता है तब उसके सभी सद्‌गुण छिप जाते हैं। यही तारकासुर के द्वारा देवताओं के पराजित होने का अर्थ है। जब बड़े-बड़े लोकपाल इन्द्रादक देवता किसी भी उपाय से युद्ध में तारकासुर को नहीं जीत सके तब समस्त देवता ब्रह्माजी की शरण में गए। यहाँ ब्रह्मा का अर्थ है बुद्धि। जब संदेह सद्‌गुणों को ग्रस लेता है तब एक मात्र बुद्धि की शरण लेने के अतिरिक्त सद्‌गुणों के पास कोई उपाय नहीं रह जाता है। यही है देवताओं का ब्रह्मा की शरण में जाने का आध्यात्मिक अर्थ।

चौ०—तव विरंचि सव जाइ पुकारे, देखे विधि सव देव दुखारे।

बुद्धि का कार्य ही है मार्ग दर्शन करना इसलिये ब्रह्मा जो बुद्धि के प्रतीक हैं, जब देखा कि समस्त देवता दुखी होकर मेरी शरण में आए हैं तब ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—

दो०—सब सन कहा बुझाइ विधि, दनुज निधन तब होइ।
शंभु शुक्र संभूत सुत, यहि जीतइ रन सोइ॥ (१८२)

हे देवताओं ! तारकासुर का बध तभी हो सकता है जब भगवान शंकर के वीर्य से पुत्र उत्पन्न होगा। इसलिये जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे सुनो और सुन कर उपाय करो अवश्य ईश्वर सहायता करेंगे। सती ने जो अपने पिता के यज्ञ में शरीर त्याग दिया था वह इस समय हिमांचल के घर में जन्म ले चुकी हैं और साथ ही भगवान शंकर को पति रूप में पाने के लिये तपस्या भी कर चुकी हैं परन्तु शिव तो समाधि में बैठे हुए हैं।

इस प्रसंग में बुद्धि के प्रतीक ब्रह्मा के कथनानुसार भगवान शंकर के वीर्य के द्वारा पार्वती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर का वध कर सकता है। इसका अभिप्राय यह जानना चाहिए कि भगवान शंकर हैं विश्वास और पार्वती हैं श्रद्धा। श्रद्धा और विश्वास के संयोग से ही साधक के हृदय में सामान्य और विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है जिसके द्वारा क्रम से संदेह और कुतर्क को जीत कर साधक अपने आध्यात्मिक पथ में सफल होता है परन्तु अब देवताओं के सामने समस्या यह है कि विश्वास के मूर्त रूप भगवान शंकर तो समाधि में बैठे हुए हैं इसलिये श्रद्धा और विश्वास का मिलन हो कैसे। इसका उपाय बुद्धि अर्थात् ब्रह्मा

देवताओं से बताते हैं कि हे देवताओं अब तुम लोग सब मिल कर कामदेव को भगवान शिव के पास भेजो और कामदेव वहाँ जाकर शिव के मन में क्षोभ पैदा करें तब मैं बाद में जाकर शिव को समझा-बुझा कर पार्वती के साथ विवाह करवा दूँगा।

यहाँ विश्वास के मूर्त रूप शिव की समाधि में बैठने का आध्यात्मिक अर्थ है विश्वास का कार्य क्षेत्र से विरत हो जाना। अर्थात् विश्वास जब श्रद्धा के अभाव में साधक के हृदय में निष्क्रिय हो जाता है तभी संदेह और कुतर्क आदि आसुरी प्रवृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं, तब सब देवता जो सद्गुण के प्रतीक हैं व्याकुल हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जब विश्वास अपनी शक्ति श्रद्धा के अभाव में निष्क्रिय हो गया हो तब आवश्यकता पड़ती है काम की क्योंकि काम के द्वारा ही मनुष्य के मन में कुछ पाने की इच्छाएँ पैदा होती हैं और इच्छाओं के वशीभूत होकर ही मनुष्य क्रिया करने में प्रवृत्त होता है। यही है भगवान शिव के मन में क्षोभ पैदा कराने का अभिप्राय। परन्तु वह काम धर्मानुकूल हो। धर्मानुकूल काम को ही ईश्वर का स्वरूप माना गया है। धर्म विरुद्ध काम को नहीं। धर्म विरुद्ध काम तो मनुष्य को पाप में ही प्रवृत्त करेगा और पाप में प्रवृत्त मनुष्य कभी भी समाज का हित नहीं कर सकता है। धर्मानुकूल काम से ही मनुष्य प्रेरित होकर अपनी अकर्मण्यता को त्याग कर कर्म क्षेत्र में प्रवृत्त होता है। आसुरी शक्तियों से प्रेरित काम को ही धर्म विरुद्ध काम कहा जाता है और दैवी शक्तियों से प्रेरित काम को ही धर्मानुकूल काम कहा जाता है। यही है देवताओं के द्वारा भगवान शंकर के मन में क्षोभ पैदा कराने के लिए कामदेव को प्रेरित करने का अभिप्राय।

अब देवताओं से प्रेरित होकर कामदेव भगवान शिव के मन में क्षोभ पैदा करने के लिए अपनी यात्रा आरम्भ करता है।

चौ०—अस कहि चलेउ सबहिं सिर नाई, सुमन धनुष कर सहित सहाई।

यद्यपि कि कामदेव यह समझता था कि भगवान शिव से विरोध करने का परिणाम मेरी मृत्यु निश्चित है फिर भी परोपकार के लिए शरीर त्याग करने से संत लोग जो सदैव मेरी निन्दा करते हैं वे भी प्रशंसा करेंगे। तब काम ने अपने प्रभाव का विस्तार किया जिससे सारा संसार अपने वश में कर लिया। कामदेव ने जब क्रोध किया तब क्षणमात्र में ही वेद की मर्यादा टूट गई।

चौ०—कोपेउ जबहिं वारिचर केतू, क्षण मंह मिटे सकल श्रुति सेतू।

ब्रह्मचर्य व्रत, सभी प्रकार के संयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग और विराग यह सब विवेक के सैनिक और सेनापति विराग भयभीत होकर भाग गए। विवेक अपने उपर्युक्त सैनिक और सेनापति विराग के सहित भाग कर सद्ग्रंथ अर्थात् वेद शास्त्र रूपी पर्वत की सुन्दर गुफाओं में उस समय जाकर छिप गया।

इसका भावार्थ यह समझना चाहिए कि ब्रह्मचर्य से लेकर योग तक के सब विवेक रूपी राजा के सैनिक माने गए हैं और विराग सेनापति माना गया है। इन उपर्युक्त सैनिकों में ज्ञान का नाम भी आया है। इस ज्ञान को सामान्य ज्ञान ही समझना चाहिए और विवेक को विशेष ज्ञान अर्थात् ब्रह्म ज्ञान। यही विवेक सब का राजा है। ऐसा ही गोस्वामी तुलसीदास ने अयोध्या काण्ड के चित्रकूट के प्रसंग में लिखा है।

चौ०—सचिव विराग विवेक नरेसू, विपिन सुहावन पावन देसू।
भट यम नियम शैल रजधानी, शांति सुमति सुचि सुंदर रानी।
सकल अंग संपन्न सुराऊ, रामचरन आश्रित चित चाऊ।
दो०—जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुआल।
करत अंकटक राजपुर, सुख सम्पदा सुकाल।। (२।२३५)

अर्थ—मंत्री या सेनापति विराग, विवेक राजा, सुन्दरवन ही पवित्र देश, यम, नियम अर्थात ब्रह्मचर्य से योग तक सैनिक, पर्वत ही राजधानी, शान्ति, सुमति और सुचि विवेक ही राजा की सुन्दर ये तीनों रानियाँ, उपर्युक्त सभी अंशों से सम्पन्न विवेक रूपी राजा श्रीराम चरण आश्रित अर्थात भक्ति से युक्त हो तब मोह रूपी राजा को दल बल के सहित जीत कर विवेक रूपी राजा पर अर्थात् इस शरीर रूपी नगर में सुख सम्पत्ति से युक्त अकण्टक राज्य कर सकता है।

इसी प्रसंग में मोह को भी राजा कहा गया है। इस मोह रूपी राजा के सैनिक अभिमान, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, जलन, अज्ञान आदि समस्त अशुभ कर्म माने गए हैं और काम को सेनापति माना गया है। ये दोनों पक्ष इस मानव शरीर रूपी सुन्दर नगर में ही रहते हैं। गीता की भाषा में विवेक के पक्ष को दैवी सम्पदा और मोह के पक्ष को आसुरी सम्पदा कह सकते हैं। यह दोनों पक्ष इस मानव शरीर रूपी सुन्दर नगर में सदैव संघर्ष करते रहते हैं। इनमें से कभी विवेक का पक्ष विजयी होता है तो कभी मोह का पच्च विजयी होता है। दोनों पक्षों का संघर्ष ही मानव शरीर का कारण है। दोनों पक्षों में से यदि एक पक्ष पूर्णरूपेण विजय प्राप्त कर लेता है तब यह मानव शरीर नहीं रहता है। विवेक के पूर्ण विजयी हो जाने पर आत्मा शरीर के बन्धन से मुक्त होकर भगवत् धाम को प्राप्त कर लेती है और मोह के पूर्ण विजयी हो जाने पर जीवात्मा को भोग योनियों की प्राप्ति होती है। परन्तु यह संघर्ष तो जब से मानव शरीर प्राप्त हुआ है तब से निरन्तर चल रहा है।

यहाँ कामदेव ने देवताओं का हित करने के लिये भगवान शंकर पर चढ़ाई किया है। यद्यपि काम देवताओं से प्रेरित है और इसका परिणाम भी बहुत अच्छा होगा तथापि इस समय काम के भय से ब्रह्मचर्य से लेकर विवेक तक भयभीत होकर वेद शास्त्र रूपी पर्वत गुफाओं में छिप गए। इनके गुफाओं में छिप जाने का भावार्थ यह है कि मानव समाज के हित के लिये आत्म कल्याण के लिये वेद शास्त्रों में जो उपदेश दिये गए हैं जैसे सत्य, अहिंसा, शोच, दया, मैत्री, करुणा, क्षमा, संतोष, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग आदि इन समस्त उपदेशों के अनुसार यथा सम्भव जब मनुष्य आचरण नहीं करता है तब मानो ये उपदेश ग्रन्थों तक ही सीमित हैं। यही है वेद शास्त्र के गुफा में छिप जाने का भावार्थ। परन्तु धर्म को आचरण में मनुष्य तभी नहीं लाता है जब वह अर्थ और काम के वश में हो जाता है।

ठीक यही दशा इस समय काम के प्रभाव से सबकी हो रही है। सभी चर अचर प्राणी त्राहि-त्राहि कर उठे हैं। सभी पुरुष अपनी-अपनी मर्यादा को छोड़कर काम के वश में हो गए हैं।

दो०—जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भये सकल बस काम।। (१८४)

सभी के हृदय में काम की अभिलाषा उत्पन्न हो गई है। लताओं को देखकर वृक्ष झुक रहे हैं, नदियाँ उमंगती हुई समुद्र में गिर रही हैं, तालाब और तलाई का संगम हो रहा है। जहाँ ऐसी दशा जड़ों की हो गई है वहाँ जो चेतन प्राणी हैं उनका क्या कहना। जल, थल और आकाश में विचरण करने वाले सभी प्राणी काम के आधीन हो गए। सारा जगत काम से अन्धा हो उठा। चकवा और चकवी अपनी स्वाभाविक मर्यादा अर्थात रात में न मिलने की मर्यादा तोड़ कर मिलने लगे। देवता, दानव, नर, किन्नर, नाग, प्रेत, पिशाच, भूत, और वेताल, गोस्वामीजी कहते हैं इनकी दशा का क्या वर्णन करूँ ये तो सदा ही काम के गुलाम हैं। अब उन महान पुरुषों पर काम का प्रभाव दिखाते हैं जिन्होंने काम पर विजय प्राप्त कर लिया था। जैसे सिद्ध, विरक्त, महामुनि और योग सिद्ध पुरुष योगी ऐसे महापुरुष लोग भी काम के वश होकर नारी वियोग की पीड़ा से पीड़ित हो उठे। बड़े-बड़े तपस्वी एवम् योग सिद्ध पुरुष भी काम के वश हो गए फिर पामर अर्थात साधारण मनुष्यों का कहना ही क्या। जिनके जीवन में स्त्री पुरुष का भेद समाप्त हो चुका था, जो ब्रह्ममय ही संसार को देखते थे वही अब इस संसार को नारीमय देखने लगे। अबला अर्थात सभी स्त्रियाँ जिनकी दृष्टि में उनका पति ही एक मात्र पुरुष था वे अब संसार को ही पुरुष मय देखने लगी और पुरुष सारे संसार को नारीमय देखने लगे। इस प्रकार दो दण्ड अर्थात ४८ मिनट तक ऊपर कहे हुए सभी चर अचर के प्राणी काम से व्याकुल होकर अपना-अपना धैर्य छोड़ दिया क्योंकि सभी के मन को काम ने हरण कर लिया था। परन्तु ऐसे कठिन समय में भी रघुवीर श्रीराम ने जिनकी रक्षा की वे बच गए।

चौ०—सिद्ध विरक्त महामुनि योगी, तेपि काम वश भए वियोगी ॥
छं०—भये काम वश योगीश तापस, पामरनि की को कहे।
देखहिं चराचर नारि मय, जे ब्रह्ममय देखत रहे।
अवला विलोकहिं पुरुषमय, जग पुरुष सब अवला मयं।
दुइ दण्ड भरि ब्रह्माण्ड भीतर, काम कृत कौतुक अयं।
सो०—धरी न काहू धीर, सबकें मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि काल मंह ॥ (१।८५)

इस प्रसंग के दो भावार्थ हैं। प्रथम-ब्रह्ममय जिनकी दृष्टि हो चुकी थी ऐसे ब्रह्मलीन मुनियों पर भी काम का प्रभाव पड़ने का यह अभिप्राय समझना चाहिए कि काम, क्रोध, लोभ ये तीनों जीव के प्रबल शत्रु हैं। इन्हें एक मात्र ईश्वर ही निर्मूल कर सकता है। ये बड़े-बड़े ब्रह्मलीन मुनियों के मन में भी क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं जैसा कि अरण्य काण्ड में दोहा नं० ३८ में श्रीराम जी ने लक्ष्मण से कहा है :—

दो०—तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विग्यान धाम मन, करहिं निमिष मंह क्षोभ ॥ (३।३८)

दूसरा यह कि लता, वृक्ष, नदी, समुद्र, ताल, तलाई, इन जड़ योनियों से आरम्भ करके सिद्ध, विरक्त, महामुनि योगी और ब्रह्ममय जिनकी दृष्टि हो चुकी थी, ऐसे ब्रह्मलीन मुनियों पर भी काम का एक जैसा ही प्रभाव पड़ने का कारण यह समझना चाहिए कि कामदेव भगवान

शिव पर विजय प्राप्त करने के लिये जा रहा है। और शिव किसी एक देशीय वस्तु का ही एकमात्र नाम नहीं है। शिव का एक अर्थ जगत भी है। इसलिये शिव का एक नाम है 'भव' और भव का अर्थ होता है 'संसार'। इसलिये हमलोग जिस शिवलिंग की पूजा करते हैं वह शिवलिंग वास्तव में ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। यही कारण है कि शिव लिंग का शुद्ध रूप अण्डे के आकार का होता है और ब्रह्माण्ड का अर्थ ही है ब्रह्मा का अण्डा।

अतः इस उक्ति से यह स्पष्ट हो गया कि यह जगत भी भगवान शिव का एक रूप है। इसलिये काम पूर्ण विजयी तभी माना जायगा जब वह भगवान शिव के जगतमय रूप के सहित शिव पर विजय प्राप्त कर लेगा। इसलिये काम ने सर्वप्रथम भगवान शिव के जगतमय रूप पर प्रभाव डाला और प्रभावित भी कर लिया। यही है चर अचर का काम के वश में हो जाने का अभिप्राय।

ऐसी विकट परिस्थिति में भी जब कि बड़े-बड़े ब्रह्मलीन मुनि जिनकी दृष्टि ब्रह्ममय हो चुकी थी, जो अखिल जगत को ब्रह्ममय देखते थे वे भी कामातुर हो उठे और सारे संसार को ही नारीमय देखने लगे उस समय में भी रघुवीर ने जिनकी रक्षा की वे बच गए या रघुवीर जिनके हृदय में थे वे बच गए। इसका अभिप्राय यह है कि मोह रूपी राजा के सेनापति काम के भय से भयभीत होकर अपने दलबल के सहित भाग कर सद्ग्रन्थ रूपी पहाड़ की कन्दराओं में छिप गए और सभी लोग अपना-अपना धैर्य छोड़कर काम के वश हो गए। ऐसे समय में भी जो लोग भक्ति का आश्रम ले रखे थे रघुवीर राम ने उनकी रक्षा की और वे बच गए।

चौ०—उभय घरी अस कौतुक भयऊ, जौं लगि काम शम्भु पंहि गयऊ।

दो घड़ी तक यह कौतुक हुआ, तब तक काम भगवान शिव के पास पहुँच गया। शिव को देखकर काम सशंकित हो उठा और काम के सशंकित होते ही संसार अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गया। सभी जीव जो अब तक काम से पीड़ित थे सुखी हो गए। उसी प्रकार जैसे किसी नशेबाज की नशा उतर गई हो, 'भए तुरत सब जीव सुखारे'। इस प्रसंग से यह शिक्षा हमें मिलती है कि काम कभी सुखद नहीं हो सकता है। काम की स्थिति वैसी ही है जैसे सोने के घड़ा में जहर भरा हो और वह जहर भी साधारण नहीं, समुद्र से निकला हुआ कालकूट से भी भयंकर। कालकूट नामक उस भयंकर जहर ने तो उस समय कुछ ही क्षणों के लिए देवताओं और असुरों को जलाया था परन्तु यह जो कालकूट से भी भयंकर जहर काम है यह तो अनन्त काल से अखिल जगत के जीवों को जला रहा है और जलाता ही रहेगा, जैसे वहाँ कालकूट नाम के जहर को भगवान शंकर ने पीकर पचाया था वैसे ही कालकूट से भी भयंकर इस जहर अर्थात काम को भगवान शंकर या भगवान शंकर जैसे ही कोई बिरला महापुरुष सम्भवतः कुछ अंश में पचा सकता है। इस काम सुख को तो दाद की खुजली ही समझना चाहिए जैसे दाद को खुजलाने में बड़ा सुख मिलता है परन्तु उसका परिणाम दिन प्रतिदिन दाद का बढ़ना और जलन ही हाथ आता है। यद्यपि हम जानते हैं कि इसे खुजलाने से यह बढ़ेगा और जलन भी होगी फिर भी खुजलाए बिना नहीं रहा जाता है। वैसे ही सारा संसार यह जानता है कि हम ज्यों-ज्यों काम को भोगेंगे त्यों-त्यों यह काम बढ़ेगा और अधिक से अधिक काम सुख को पाने के लिये हृदय में जलन भी होगी फिर भी अनन्त काल से दाद की खुजली की तरह हम इसको खुजलाते आ रहे हैं और खुजलाते रहेंगे।

अस्तु वह काम जो अब तक भगवान शिव के जगत मय रूप को प्रभावित कर रखा था, दुराधर्ष, दुर्गम भगवान रूद्र को देखकर भयभीत हो उठा।

चौ०—रुद्रहिं देखि मदन भय माना, दुराधरष दुर्गम भगवाना।

'दुराधरष' जिसका धारण करना अत्यन्त कठिन हो। दुर्गम-भगवान रुद्र को देख कर कामदेव डर गया। बिना कुछ किए लौट जाना तो बहुत लज्जा की बात होगी परन्तु कुछ करते भी नहीं बन रहा है। इसलिए कामदेव ने निश्चय किया कि इनसे लड़कर मर जाना मेरे लिए अच्छा है परन्तु खाली लौटना अच्छा नहीं। अन्त में अपमानित होकर लौटने की अपेक्षा मरना ही अच्छा समझ कर उपाय रचा अर्थात् कार्य आरम्भ किया। सबसे पहले सुन्दर ऋतु राज (वसन्त ऋतु) प्रगट किया। सुन्दर नये-नये फूलों से लदे हुए वृक्ष जिनकी बहुत ही शोभा हो रही थी ऐसे वृक्षों से भरे हुए वन, उपवन जिनमें क्रम से बड़े-बड़े सरोवरों से युक्त वन और बावड़ियों से युक्त उपवन अर्थात् बगीचे प्रगट हो गए। उन, वन, उपवनों में भिन्न-भिन्न विभागों के सहित दिशाएँ परम सुशोभित हो रही थीं। उन वन उपवनों में जहाँ तहाँ जन अर्थात् कामदेव के अनुचर अनुराग में उमङ्ग रहे थे जिन्हें देख कर मरे हुए मन में भी काम जाग उठे, कामदेव के सहयोगी ऐसी ही क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय उस वन की शोभा इतनी अधिक हो रही थी कि जिसका वर्णन करना बहुत ही कठिन है। शीतल, मन्द, सुगन्ध काम को उत्तेजित करनेवाली हवाएँ चल रही थीं। सरोवरों में बहुत ही सुन्दर कमल खिले हुए थे जिन पर बहुत ही सुन्दर भ्रमरों के समूह गूँज रहे थे। सरोवरों में सुन्दर हंस एवम् वन उपवनों में कोयल और शुक रस से युक्त बोली बोल रहे थे और अप्सराएँ अपने कोकिल कण्ठों से गाती हुई नाच रही थीं।

कामदेव अपनी सभी प्रकार की कलाओं को करोड़ों प्रकार से करके अपनी सेनाओं के सहित हार गया परन्तु शिव की अचल समाधि विचलित नहीं हुई तब हृदय ही जिसका घर है वह कामदेव क्रोधित हो उठा।

दो०—सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदय निकेत ॥ (१।८६)

इस प्रसंग में प्रथम तो शिव को देखकर काम संकुचित हो गया और बाद में रूद्र को देखकर भयभीत हो गया। इसका अभिप्राय यह है—शिव का अर्थ है कल्याण अर्थात् कल्याण-मय। मङ्गलमय अत्यन्त मनोहर शिव स्वरूप को देखकर काम लज्जित हो गया और उसी कल्याण स्वरूप शिव का रुद्र रूप देखकर भयभीत हो गया। इससे यह समझना चाहिए कि जीव के हृदय में जैसी भावना होती है चाहे वह देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग, किन्नर, असुर जो कोई भी हो उसके हृदय में जैसी भावना होती है उसे उसी रूप में ईश्वर का दर्शन होता है। अतः यहाँ काम का अर्थ है नकली सुख और शिव का अर्थ है असली सुख। यद्यपि काम सुख नकली सुख है फिर भी ईश्वर के अतिरिक्त अखिल जगत के समस्त प्राणी चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सब उसी में फंसे हुए हैं। इसलिये कामदेव को अभिमान होना स्वाभाविक ही है। अखिल जगत के विजयी कामदेव को अपने नकली अर्थात् कृत्रिम सुखमय रूप पर उसी प्रकार घमंड था जैसे रात्रि में चन्द्रमा को अपने सुन्दर रूप और प्रकाश पर घमंड होता है परन्तु प्रातः काल सूर्य

का उदय होते ही जैसे चन्द्रमा का अपना रूप और प्रकाश का घमंड चूर हो जाता है और वह लज्जित हो जाने के कारण फीका पड़ जाता है ठीक उसी प्रकार काम जिसे अपने कृत्रिम (नकली) सुखमय रूप पर बड़ा अभिमान था वह वास्तविक (असली) सुख स्वरूप भगवान शिव को देखकर संकुचित हो गया। यह उसकी अत्यंत सुन्दरताप्रिय भावना जो अहं से युक्त थी उसी का फल था। अब सुन्दरता की प्रतिद्वन्दिता में पराजित काम क्रोधित हो उठा। क्रोधित काम ने अपनी कोध युक्त भावना से ज्यों ही भगवान शिव को पुनः देखा तो अब भगवान शिव का प्रचण्ड रौद्र रूप सामने था जिसे देखकर कामदेव भयभीत हो उठा और समझ गया कि अब इनसे विरोध करने पर मेरी मृत्यु निश्चित है, तथापि अपमानित होकर लौटने की अपेक्षा रौद्र रूप शिव से लड़कर मर जाना ही उचित समझा और 'मरता क्या नहि करता' इस नीति के अनुसार कामदेव ने मन में निश्चय किया कि मरते-मरते कुछ न कुछ तो कर ही डालूंगा। ऐसा निश्चय करके उसने अपनी सारी कलाओं को करोड़ों प्रकार से भगवान शिव पर प्रयोग किया परन्तु भगवान शिव की अचल समाधि विचलित नहीं हुई।

तब हृदय ही जिसका घर है ऐसा काम और भी क्रोधित हो उठा और सामने ही एक विशाल आम का वृक्ष जिसकी शाखाएँ बड़ी-बड़ी थीं देखा। अपराजित काम प्रथम बार शिव से पराजित होने के कारण अत्यन्त क्रोधित होकर उस विशाल आम के वृच्छ पर चढ़ गया और फूलों के बाण अपने धनुष पर चढ़ा कर अत्यधिक क्रोध के कारण भगवान शिव को निशाना बना कर उसे कानों तक खींचा। अग्नि से भी बढ़कर हृदय को जलाने वाला उस विषम बाण को छोड़ दिया। वह जाकर हृदय में लगा जिससे भगवान शिव की समाधि छूट गई और वे जग गए। ईश अर्थात् शिव के मन में विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न हो गया। तब शिव ने आँख खोल कर चारों ओर देखा। खुशबूदार फूल और पत्तों से लदे हुए वृक्ष पर कामदेव को देखकर क्रोधित हो उठे जिससे त्रिलोक कांपने लगा। तब शिव ने तीसरी आँख खोल कर देखा जिससे कामदेव जल कर भस्म हो गया।

चौ०—देखि रसाल विटप वर शाखा, तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा।
सुमन चाप निज सर संधाने, अति रिसि ताकि श्रवन लग ताने।
छाड़े विषम विसिख उर लागे, छूटि समाधि शंभु तब जागे।
भयउ ईश मन क्षोभ विशेषी, नयन उघारि सकल दिसि देखी।
सौरभ पल्लव मदन विलोका, भयउ कोप कम्पेउ त्रैलोका।
तब शिव तीसर नयन उघारा, चितवत काम भयउ जरि छारा।

यहाँ भगवान शिव को विचलित करने में जब कामदेव की सारी कलाएँ व्यर्थ चली गई तब वह क्रोधित होकर विशाल आम के वृच्छ पर चढ़ गया और अपने फूलों के बाण धनुष पर रख कर उसे कानों तक खींच कर निशाना साध कर कुछ क्षण प्रतीक्षा करता रहा क्योंकि बिना आधार के काम या क्रोध उत्पन्न नहीं होते। अन्यान्य ग्रन्थों के अनुसार उस समय पार्वती वहाँ उपस्थित थीं। भगवान शिव उस समय अन्तरंग एवम् वाह्य सभी सद् असद् चेष्टाओं से विरत होकर अपने इष्टदेव श्रीराम का ध्यान कर रहे थे। भगवती उमा जो अपने

पिता की आज्ञा से उस समय समाधिस्थ शिव की देख-रेख करने के लिए वहाँ उपस्थित थीं सन्मुख खड़ी चकोर की भाँति टकटकी बाँध कर अपने प्रियतम शिव के मुखचन्द्र को निहार रही थीं। ईश्वरी प्रेरणा से अर्थात् अखिल विश्व की आत्मा श्रीराम की ही प्रेरणा से, क्योंकि श्रीरामजी ऐसा चाहते थे शिव ने आँख खोल दिया। ज्यों ही शिव ने आँख खोल कर देखा पार्वती पहले से ही देख रही थीं। बस चारों आँखें एक हुई कि कामदेव ने अपना बाण छोड़ दिया।

ताकि कामोद्दीपन की आधार पार्वती वहाँ थीं और भगवान श्रीराम की इच्छा भी यही थी इसलिये भगवान शिव के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ अर्थात् पार्वती को पाने की इच्छा प्रबल हो उठी परन्तु भगवान शिव बहुत शीघ्र ही संभल गए और सोचने लगे कि निश्चय ही यहाँ कोई तीसरी शक्ति कार्य कर रही है जिसके प्रभाव से प्रभावित होकर मेरा मन उद्विग्न हो उठा है। इसलिये शिव पुनः आँख खोलकर सभी दिशाओं में देखने लगे और तब देखा कि खुशबूदार फूल और पत्तों से लदे हुए आम के वृक्ष पर एक बहुत ही सुन्दर क्रीट, मुकुट, पीताम्बर, धनुष, बाण, तरकस धारण किये हुए श्याम शरीर धारी जिनकी बड़ी-बड़ी विशाल आँखें हैं ऐसा पुरुष वीरासन में बैठा हुआ है। बस क्या कहना था आँखें तो ललचा उठीं और कहने लगीं हो न हो यह इष्टदेव श्रीराम ही हों। तब तक भगवान शंकर के शुद्ध अन्तःकरण से एक आवाज आई सावधान! यह इष्टदेव श्रीराम नहीं हो सकते हैं। यह सुनकर आँखों ने प्रश्न किया क्यों? यह श्रीराम क्यों नहीं हो सकते हैं। सब कुछ तो वैसा ही है सिर में क्रीट मुकुट, शरीर में सुन्दर पीताम्बर, हाथों में सुन्दर धनुष बाण, आजानुलम्बित भुजाएँ, बड़ी-बड़ी विशाल आँखें, सुन्दर श्याम शरीर तब फिर तुम क्यों शंका करते हो कि यह श्रीराम नहीं हो सकते हैं।

यहाँ यह ध्यान रहे कि राम और काम दोनों का रूप एक ही जैसा है। अन्तर इतना ही है कि श्रीराम का रूप विशुद्ध त्रिगुणातीत एवम् सनातन है और काम का रूप मायामय अर्थात् गुणमय एवं अनित्य है परन्तु सामान्य दृष्टि से अर्थात् इन साधारण आँखों से देखकर कोई यह निर्णय नहीं कर सकता है कि यह राम हैं कि काम हैं। तभी तो भगवान शंकर जैसे महापुरुष की भी साधारण आखें धोखा खा रही हैं और अंतःकरण से कह रही है कि तुम क्यों शंका करते हो। यह तो इष्टदेव श्रीराम ही लगते हैं इस पर सप्रमाण कि यह ब्रह्म श्रीराम कदापि नहीं हो सकते हैं पुनः अन्तःकरण से आवाज आई। वह प्रमाण यह था कि यदि यह ब्रह्म श्रीराम होते तो निश्चय ही इनके दर्शन से मुझे शान्ति मिलती परन्तु यहाँ तो मैं अशान्त हो रहा हूँ इसलिये यह ब्रह्म श्रीराम नहीं हो सकते।

अब जब कि एक ओर आँखें कह रही हैं कि यह इष्टदेव श्रीराम हैं और दूसरी ओर अन्तःकरण कह रहा है कि यह श्रीराम नहीं हो सकते ऐसी द्वन्दात्मक परिस्थिति से मुक्ति पाने के लिये या यह निर्णय करने के लिये कि ये ब्रह्म श्रीराम हैं कि कोई अन्य शक्ति है, भक्ति से बढ़कर इसका दूसरा उपाय और क्या हो सकता था। इसलिये भगवान शिव ने भक्ति का आश्रय लेना ही उचित समझा और तब भक्ति रूपी तीसरी आँख खोलकर जैसे ही शिव ने देखा काम जल कर भस्म हो गया।

काम को जलाकर जब भगवान शंकर ने भस्म कर दिया तब सारे जगत में भारी हाहाकार मच गया। हाहाकार मचाने वालों में दोनों पक्षों के लोग हैं—देवता भी और असुर भी। देवता लोग तो इसलिये हाहाकार मचा रहे हैं कि हाय अब क्या होगा। हम लोगों की तो सारी योजना ही असफल हो गई। अब कैसे भगवान शंकर के वीर्य से पुत्र उत्पन्न होगा और कैसे तारकासुर मारा जायगा। हाय! अब हम लोगों का कैसे हित होगा। और असुर पक्ष के लोग इसलिये हाहाकार मचा रहे हैं कि बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ, काम देव को भगवान शंकर ने जला कर भस्म कर दिया। बहुत अच्छा किया। क्योंकि अब भगवान शंकर के वीर्य से न तो पुत्र उत्पन्न होगा और न हम लोगों का सेनापति तारकासुर मारा जायगा। इसलिये 'डरपे सुर भए असुर सुखारे' काम के भस्म हो जाने से देवता लोग डर गये और असुर सुखी हो गए। काम सुख का स्मरण करके भोगी लोग चिन्तित हो उठे कि अब काम सुख कैसे मिलेगा और साधक योगी अकण्टक अर्थात प्रसन्न हो गए। अच्छा हुआ दुष्ट जल कर भस्म हो गया। जब कामदेव की पत्नी रति ने सुना कि मेरे पति को भगवान शिव ने जला कर भस्म कर दिया तो दुख से मूर्छित हो गई और रोती बिलखती बहुत प्रकार से करुणा करती हुई भगवान शंकर के पास पहुँच कर अनेकों प्रकार से बहुत प्रेम के साथ अनुनय विनय करती हुई सन्मुख खड़ी हो गई। तब प्रभु सब कुछ करने में समर्थ आसुतोष एक बूंद आँसू पर संतुष्ट हो जाने वाले कृपालु शिव अपने सन्मुख रोती हुई अबला अर्थात जिसका सारा बल टूट चुका है, ऐसी रति को देखकर सत्य बोले।

दो०—अब ते रति तव नाथ कर, होइहिं नाम अनंग।
बिनु बपु व्यापहिं सबहिं पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंग ॥ (१।८४)

हे रति! अब से तुम्हारे पति का नाम अनंग होगा। (बिना शरीर का) बिना शरीर का ही सबको व्यापेगा (काम पीड़ित करेगा) परन्तु पुनः तुमसे कैसे मिलने होगा उस प्रसंग को सुनो।

चौ०—जब यदुवंश, कृष्ण अवतारा, होइहिं हरण महा महिभारा।
कृष्ण तनय होइहिं पति तोरा, वचन अन्यथा होइ न मोरा।

हे रति! जब यदुवंश में कृष्ण का अवतार होगा पृथ्वी का कठिन भार उतारने के लिये तब तुम्हारा पति कामदेव भगवान कृष्ण का पुत्र बन कर जन्म लेगा और तब तुम पुनः अपने पति से मिल पाओगी। यह मेरा बचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता है। इस प्रकार भगवान शंकर से वरदान पाकर रति चली गई।

प्रथम तो ब्रह्म श्रीराम की इच्छा से काम का प्रभाव भगवान शंकर के मन पर पड़ा परन्तु बाद में उसी ब्रह्मतेज से शिव ने काम को जलाकर भस्म कर दिया। कारण कि दोनों को ही अपनी असावधानी का फल मिला। भगवान शिव की असावधानी यह थी कि कुछ समय पूर्व भगवान श्रीराम आसुतोष शिव से शादी करने के लिये कह गये थे। श्रीराम यह नहीं चाहते थे कि शिव समाधि में बैठें। श्रीराम बार-बार कह गये थे कि जो मैं कह रहा हूँ (शादी के लिये) उसे ध्यान में रखना परन्तु श्रीराम के चले जाने पर भगवान शिव ने समाधि लगा लिया। क्या यह उस अपराजिता शक्ति श्रीराम की इच्छा के विरुद्ध

शिव ने आचरण नहीं किया अर्थात् यही थी शिव की असावधानी और इसी का दुष्परिणाम था काम के द्वारा पराजित हो जाना, यद्यपि अन्तिम विजय भगवान शिव की ही होगी।

काम देव की असावधानी यह थी कि जिस समय काम ने भगवान शिव पर प्रहार किया उस समय भगवान शिव सावधान थे, अर्थात् समाधि में बैठे थे। समाधि का अर्थ है—सम हैं धी जिसकी अर्थात मन में रहनेवाली सभी शुभ-अशुभ इच्छाएँ जिसके मन से जा चुकी हों और जिसका मन अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो चुका हो, उसे ही समाधि सिद्ध पुरुष कहा जाता है या उस अवस्था का नाम समाधि है।

दुख में जिसका मन दुखी नहीं होता है और सुख में जिसकी इच्छा नहीं होती है। भय, क्रोधादि और राग से जिसका मन विरत हो चुका है उसे ही समाधि सिद्ध पुरुष कहते हैं या उस अवस्था का नाम समाधि है। यह है समाधि का अर्थ।

भगवान शिव उस समय समाधि में बैठे हुए अपने इष्टदेव ब्रह्म श्रीराम का ध्यान कर रहे थे। यही है भगवान शिव का सावधान रहना। उसी समय कामदेव ने प्रहार किया और सावधान शिव ने जो उस समय ब्रह्मतेज से युक्त थे काम को जलाकर भस्म कर दिया।

यह समाचार जब रति को मिला तब अत्यन्त शोकातुर होकर रोती बिलखती हुई रति आसुतोष शिव के समीप गई और अत्यन्त प्रेम से बिनती करती हुई सम्मुख खड़ी हो गई। आसुतोष शिव रति को रोती हुई देखकर द्रवित हो उठे और बोले कि हे रति! यद्यपि तुम्हारा पति कामदेव मुझसे लड़कर नष्ट हो गया है तथापि उसने देवताओं का हित करने के लिये शरीर का त्याग किया है। उसमें उसका निजी स्वार्थ कुछ भी नहीं था। उसने परोपकार के लिये अपने प्राणों की बाजी लगायी और मुझसे लड़कर नष्ट हो गया है और परोपकार से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है इसलिये तुम्हारे पति कामदेव को अब वह सौभाग्य प्राप्त होगा जो और किसी दूसरे पुण्यबल से प्राप्त नहीं होता है और तभी तुम्हारा मिलन भी होगा। उसे सुनो। जब द्वापर के अन्त में पृथ्वी का कठिन भार उतारने के लिये भगवान कृष्णावतार लेंगे तब तुम्हारा पति जो तब तक बिना शरीर का ही सबके मन को मथता रहेगा वह भगवान कृष्ण का पुत्र बन कर उस सनातन ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र की गोद में खेलेगा। यही है वह सौभाग्य जो परोपकार के अतिरिक्त और किसी उपाय से प्राप्त नहीं होता है।

इसका एक उदाहरण और भी है मानस में जैसे गीधराज जटायु को परोपकार के लिये प्राणों की बाजी लगाने के फलस्वरूप ही सनातन ब्रह्म श्रीरामचन्द्र की गोद में शरीर त्यागने का सुअवसर प्राप्त हुआ जबकि बड़े-बड़े मुनि लोग भी अन्त समय में बड़ी कठिनाई से रामनाम का उच्चारण कर पाते हैं। यह है परोपकार का फल। इसलिये शक्ति के अनुसार हमें परोपकार करने का व्रत लेना चाहिए। यही इस प्रसंग से हमें शिक्षा मिलती है।

भगवान शंकर के सुख से अपने पति का पुनर्जन्म एवम् पुनः पति से मिलने की कथा सुनकर रति संतुष्ट होकर चली गई।

चौ०--रति गवनी सुनि शंकर बानी कथा अपर अब कहहुं बखानी।

रति को यह वरदान मिला कि बिना शरीर का तुम्हारा पति अर्थात् कामदेव सबको व्यापेगा।

चौ०—देवन समाचार सब पाए, ब्रह्मादिक वैकुंठ सिधाए।
सब सुर विष्णु विरंचि समेता, गए जहाँ शिव कृपानिकेता।

देवताओं ने जब यह समाचार पाया रति को वरदान मिलने का तब ब्रह्म के समेत सभी देवता वैकुंठ गए और बैकुंठ से भगवान विष्णु और ब्रह्म के साथ वहाँ गए जहाँ कृपा के निकेत भगवान शिव थे। शिव के पास पहुँच कर सभी देवताओं ने पृथक-पृथक भगवान शिव की प्रशंसा की जिससे चंद्रमौलि शिव प्रसन्न होकर बोले कहिए अमर! आप किसलिए आए हैं ? तब ब्रह्मा ने कहा आप तो प्रभु हैं, अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते हैं कि हमलोग क्यों आए हैं फिर भी आप भक्ति के वश में हैं इसलिये हमलोग अपनी इच्छा प्रगट कर रहे हैं।

दो०—सकल सुरन्ह के हृदय अस, शंकर परम उछाह।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार विवाह ॥ (१।८८)

हे शंकर! सभी देवताओं के हृदय में यह लालसा है कि वे अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं, सब लोग आपका विवाह महोत्सव भर नेत्र देखना चाहते हैं इसलिये हे कामदेव के अभिमान को चूर करने वाले शिव आप ऐसा ही करें अर्थात् विवाह के लिये तैयार हो जायँ। आपने काम को जलाकर बाद में रति को वरदान दिया। हे कृपा के सिन्धु! यह आपने बहुत अच्छा किया। प्रथम शासन करना और बाद में स्नेह करना हे नाथ बड़े लोगों का यही स्वभाव होता है। अब पार्वती को स्वीकार करिये क्योंकि पार्वती ने बहुत ही कठिन तपस्या किया है आपको प्राप्त करने के लिये। ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर और प्रभु अपने इष्टदेव श्रीराम की आज्ञा को स्मरण करके शिव ने तथास्तु कहकर ब्रह्मा की प्रार्थना स्वीकार कर लिया अर्थात् शादी के लिये तैयार हो गए। तब देवताओं ने अपनी दुन्दुभी बजाया और महादेव शिव की जय जयकार करते हुए फूलों की वर्षा करने लगे।

चौ०—तब देवन्ह दुन्दभी बजाई, वरसि सुमन जय जय सुरसाई।

इस प्रसंग में देवता लोग विष्णु को लेकर शिव के पास इसलिये आए कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश अर्थात् शिव ये तीनों एक स्तर के देवता हैं। ये तीनों मिलकर ही विश्व ब्रह्माण्ड का संचालन करते हैं। क्योंकि इन तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में ही ब्रह्म ने सबसे पहले अपने को प्रगट किया है। जब महाप्रलय के बाद जीव और जगत सूक्ष्म रूप से अनन्त काल तक उस सनातन ब्रह्म में निवास करता है तब पुनः इस विश्व ब्रह्माण्ड को स्थूल रूप में प्रगट करने का वह सनातन ब्रह्म संकल्प करता है और तब ब्रह्म के संकल्प करते ही यह विश्व ब्रह्माण्ड पुनः प्रगट हो जाता है। परन्तु इस विश्व ब्रह्माण्ड को प्रगट करने की इच्छा से वह ब्रह्म अपने महान विराटमय रूप के द्वारा सर्वप्रथम इन्हीं तीनों देवताओं ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में अपने को प्रगट करता है क्योंकि संस्कृत भाषा में ब्रह्म शब्द नपुंसक लिंग माना गया है। अर्थात् जो न नर हो न नारी हो और ब्रह्मा शब्द पुलिंग माना गया है अर्थात् पुरुष लिंग। इसलिये वह ब्रह्म विश्व ब्रह्माण्ड को पैदा करने की इच्छा से सर्व प्रथम

ब्रह्म से ब्रह्मा बनता है अर्थात् नपुंसकता को छोड़कर पुरुषत्व को स्वीकार करता है। अर्थात् निष्क्रिय से सक्रिय होता है। परन्तु अकेले पुरुष तत्व से सृष्टि का क्रम सुचारू रूपेण नहीं चल पाता है तब ब्रह्म अपने संकल्प से नारी तत्व अर्थात् शक्ति को प्रगट करता है और जब वह पुरुष-तत्व ब्रह्म-नारी तत्व शक्ति से संपन्न हो जाता है तब सृष्टि का क्रम सुचारू रूपेण चल पड़ता है।

इस उपर्युक्त प्रकार से ब्रह्मा के रूप में सृष्टि, विष्णु के रूप में पालन और शिव के रूप में संहार करने का कार्य ब्रह्म ही अपने को इन तीनों रूपों में प्रगट करते रहते हैं परन्तु इन तीनों में से एक भी जब कभी शक्ति के अभाव में निष्क्रिय हो जाता है तब इस विश्व ब्रह्माण्ड के संचालन में बड़ी भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती हैं। अतः इस समय भगवान शिव अपनी शक्ति के बिना निष्क्रिय हो गए हैं। इसलिए उनका संहार का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से न चलने के कारण ही आसुरी शक्तियाँ प्रबल हो उठी हैं अर्थात् तारकासुर जैसा भयंकर असुर पैदा हो गया है और इस विश्व ब्रह्माण्ड में बड़ी भारी अव्यवस्था उत्पन्न कर दिया है परन्तु तारकासुर जैसा भयंकर असुर का विनाश अर्थात् आसुरी शक्तियों का दमन तो तभी हो सकता है जब संहार कर्त्ता भगवान शिव पुनः अपनी शक्ति से सम्पन्न हो जायँ। यही है ब्रह्मा विष्णु के द्वारा पार्वती से विवाह करने के लिये शिव से अनुरोध करने का अभिप्राय।

चौ०—अवसर जानि सप्त ऋषि आए, तुरतहिं विधि गिरि भवन पठाए।

जब शिव ने विवाह करना स्वीकार कर लिया तब ठीक समय जानकर सप्त ऋषि लोग आए। ब्रह्मा ने उन्हें तुरन्त हिमांचल के घर भेजा। सप्त ऋषि लोग सर्व प्रथम जहाँ पार्वती थीं वहाँ गए और छल से युक्त मधुर वचन बोले। हे उमा! आपने हम लोगों का कहना उस समय नारद के उपदेश के मुकाबले में नहीं पसंद किया था अब तो आपकी प्रतिज्ञा झूठी हो गई क्योंकि भगवान शिव ने काम को जलाकर भस्म कर दिया।

यहाँ सप्त ऋषियों ने पुनः पार्वती की परीक्षा लेने के लिये छल से युक्त वचनों का सहारा लिया। यद्यपि एक बार परीक्षा ले चुके हैं और पार्वती उस परीक्षा में पूर्णरूपेण सफल हो चुकी हैं परन्तु पुनः परीक्षा लेने का अभिप्राय यह है कि सप्त ऋषि लोग यह जानना चाहते हैं कि पार्वती में कर्त्ता पन का भाव तो नहीं है? या सकाम भाव से तो कर्म नहीं किया है? क्योंकि पार्वती ने जैसी तपस्या की है वैसी तपस्या आज तक किसी ने नहीं किया है। पार्वती की अत्यन्त कठिन तपस्या को देखकर वरदान देते हुए ब्रह्मा ने स्वयं कहा है :—

चौ०—अस तप काहु न कीन्ह भवानी, भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी।

हे भवानी! आज तक ऐसी तपस्या किसी ने नहीं किया यद्यपि अनेक धीर मुनि ज्ञानी हो चुके हैं। इसलिये कर्त्तापन का अभिमान होना स्वाभाविक ही है। परन्तु यदि साधक में कर्त्तापन का अभिमान हो जाँय कि मैंने ऐसा महान कर्म किया है जैसा जल्दी कोई नहीं कर सकता है तो निश्चय ही वह अपने महानतम कर्म से गिर जायगा। अतः उसका घोर पतन होगा। इसलिए साधक को सदैव कर्त्तापन के अभिमान से सावधान रहना चाहिये।

पार्वती की तपस्या भी अद्वितीय है। ऐसी तपस्या आजतक किसी ने नहीं किया है। सम्भवतः पार्वती के मन में कर्त्तापन का अभिमान हो इसलिये ऋषि लोग पुनः परीक्षा लेने के

लिए छल से युक्त वचन बोले।

दूसरा पक्ष यह है कि पार्वती ने तो कहीं सकाम भाव से तो तपस्या नहीं किया है? यदि सकाम भाव से तप किया है तो वह कर्म उत्तम नहीं माना जायगा। क्योंकि सकाम भाव से अर्थात् इन्द्रियों के सुख के लिए जो कर्म किया जाता है वह सब सकाम कर्म है और सकाम भाव से किया हुआ महान से महान कर्म छुद्रतम फल को देने वाला होता है जबकि निष्काम भाव से किया हुआ छोटा सा छोटा कर्म भी महान फल को देने वाला होता है। जैसे पवित्रतम गंगा जी का जल गंदे नाले में पहुँच कर गन्दे नाले का जल हो जाता है ऐसे सकाम भाव से किये हुए कर्म समझना चाहिये, और जैसे गंदे नाले का जल गंगा में मिलकर पवित्रतम गंगा जल बन जाता है वैसे ही निष्काम भाव से किया हुआ कर्म चाहे वह छोटा ही क्यों न हो बड़ा से बड़ा फल देने वाला हो जाता है। ठीक इसी प्रकार यदि पार्वती ने सकाम भाव से अर्थात् इन्द्रियों के सुख के लिए तपस्या किया है तब तो भगवान शिव के साथ शादी होना अर्थात् शिव की प्राप्ति होना असम्भव है और यदि निष्काम भाव से किया है तभी पार्वती भगवान शिव को पति के रूप में प्राप्त कर सकेंगी। इसलिए पुनः परीच्छा के लिए ऋषियों ने छल से युक्त वचनों का सहारा लिया।

चौ०—सुनि बोली मुसकाइ भवानी, उचित कहेउ मुनिवर बिग्यानी।

सप्त ऋषियों के छल से युक्त वचनों को सुनकर भवानी अर्थात् पार्वती मुस्काईं और बोलीं आप लोग मुनियों में श्रेष्ठ हैं इसलिये आप लोगों ने उचित ही कहा। आपके विचार से अब काम को जला दिया और अब तक शम्भु काम सुख के पक्ष में थे परन्तु मैं तो शिव को सदैव अजन्मा, माया से परे, अकाम, अभोगी और योगी समझती हूँ। यदि मैंने ऐसा जानकर प्रेम के सहित मन, वचन, कर्म से शिव की सेवा किया है तो हे मुनि श्रेष्ठ! सुनिये, कृपानिधि ईश मेरी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करेंगे परन्तु आप लोगों ने जो यह कहा कि हर अर्थात् शिव ने काम को जला दिया यह आपका बहुत बड़ा अज्ञान है। हे तात! (प्रेम आदर से युक्त शब्द) अग्नि का यह सहज स्वभाव है कि उसके समीप में हिम अर्थात् शीत जा नहीं सकता। यदि समीप चला जाय तो अवश्य नष्ट हो जायगा जैसे मन्मथ, कामदेव महेश के समीप जाकर नष्ट हो गया।

पार्वती समझ रही हैं कि ये लोग पुनः परीक्षा लेने के लिये आए हैं इसलिये ऋषियों के छल से युक्त वचनों को सुनकर हँसी और बोलीं "हे ऋषियों! मैंने जो भगवान शिव को पति के रूप में पाने के लिये तपस्या किया है वह इसलिए नहीं किया है कि शिव मेरे पति बन कर मुझे सुख देंगे। मेरे विचार से तो शिव अजन्मा हैं—जो कभी जन्म नहीं लेते, अनवद्य अर्थात् जो माया से परे, अकाम अर्थात् जिनके मन की सभी कामनाएँ समाप्त हो चुकी हों, अभोगी अर्थात् इन्द्रियों के सुख से परे और योगी—योग सिद्ध पुरुष। मेरे मन में तो कभी सपने में भी शारीरिक सुख की भावना उत्पन्न नहीं हुई और न तो मैंने शारीरिक सुख के लिए भगवान शिव की सेवा ही किया। मैंने तो एक मात्र भगवान शिव की प्रसन्नता के लिये ही तपस्या किया है। अतः न तो मुझे यही अभिमान है कि मैंने बहुत बड़ी तपस्या की है और न तो उसमें मेरा कोई निजी स्वार्थ ही है। इसलिये यदि मेरा कर्म निष्काम और कर्त्तापन के

अभिमान से रहित हैं तो मेरी प्रतिज्ञा कृपा के खजाना ईश अर्थात् परमात्मा अवश्य पूरी करेंगे।

दो०—हिय हरषे मुनि वचन सुनि, देखि प्रीति विश्वास।
चले भवानिहिं नाइ सिर, गए हिमांचल पास।। (१।९०)

सकाम भाव और कर्त्तापन से रहित पार्वती के मन में शिव के प्रति प्रेम और विश्वास देख कर ऋषियों के हृदय में अपार हर्ष हुआ। भवानी को प्रणाम करके ऋषि लोग महाराज हिमांचल के पास गए और वहाँ जाकर काम दहन से लेकर कामदेव की पत्नी रति को वरदान मिलने की कथा और शिव ने विवाह करने की स्वीकृति दे दी, यहाँ तक की सारी कथा हिमांचल को सुना दिया। इस शुभ समाचार को सुनकर हिमांचल की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा अर्थात् बहुत ही प्रसन्न हुए और ज्योतिष विद्या के जानकार मुनियों को बुलाकर विवाह का महूर्त एवम् बारात आने की तिथि सब निश्चित करके वह पत्र हिमांचल ने सप्त ऋषियों को दे दिया। सप्त ऋषियों ने यह निमंत्रण पत्र कैलाश पहुँच कर समस्त देवताओं के साथ उपस्थित ब्रह्मा के हाथ में दे दिया। ब्रह्माजी ने वह निमंत्रण पत्र पढ़कर वहाँ उपस्थित भगवान विष्णु, भगवान शंकर के सहित सभी देवताओं को सुनाया। यह सुनकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और अब बारात की तैयारी होने लगी।

दो०—लगे संवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।
होंहि सगुन मँगल सुभद, करहिं अपसरा गान।। (१।९१)

सभी देवता अपने-अपने वाहन एवम् अनेक प्रकार के विमानों को सजाने लगे। उस समय मंगलमय शुभ देने वाले बहुत से सगुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं।

चौ०—शिवहिं शंभुगन करहिं सिंगारा, जटा मुकुट अहि मौर संवारा।
कुंडल कंकन पहिरे व्याला, तन विभूति पट केहरि छाला।।
शशि ललाट सुन्दर सिर गंगा, नयन तीन उपवीत भुजंगा।
गरल कंठ उर नर सिर माला, अशिव वेश शिवधाम कृपाला।।

अर्थ-शिव के गण उस समम शिव का शृंगार करने लगे। बड़ी-बड़ी जटाओं का मुकुट बना दिया, उस पर साँपों का मौर बना कर सजा दिया, पतले साँपों का कानों में कुंडल और हाथों में कंगन बना कर पहिना दिया, सुंदर शरीर में चिता का भस्म लपेट कर बाघम्बर पहिना दिया। तीन नेत्रों से युक्त ललाट पर सुन्दर चन्द्रमा और सिर पर सुन्दरी गंगा सुशोभित हो रही हैं, और सर्पों का यज्ञोपवीत बना कर शिवगणों ने भगवान शिव को पहिना दिया। गले में जहर और हृदय पर मुंडों की माला से युक्त अमंगल वेष होते हुए भी आप मंगल के धाम हैं। हाथ में डमरू और त्रिशूल से सुशोभित भगवान शिव जब बसह अर्थात् बैल पर चढ़कर चले तो बाजे बजने लगे।

यहाँ भगवान शिव की वेष भूषा तो अमंगल है लेकिन हैं आप मंगल के धाम। इसका भावार्थ यह समझना चाहिए कि ईश्वर में सदैव बिरोधी धर्म बना रहता है। यही ईश्वर की सबसे बड़ी पहचान है। ईश्वर कभी भी किसी देश काल या शुभाशुभ कर्म के द्वारा बाधित

नहीं होते हैं। देश काल के द्वारा बाधित होने का अर्थ है जैसे जीव एक समय में और एक ही देश में रह सकता है, वह उसी समय वहाँ और उसी समय दूसरे देश में नहीं रह सकता है। यही है देश और काल के द्वारा बाधित होना परन्तु ईश्वर तो एक ही समय में यहाँ और वहाँ सभी स्थानों में रहते हैं। ईश्वर तो एक भी हैं अनेक भी हैं, यहाँ भी हैं वहाँ भी हैं, कोमल भी हैं कठोर भी हैं, संसार में भी हैं संसार से परे भी हैं, निर्गुण भी हैं सगुण भी हैं, एक जगह होते हुए भी अखिल जगत में व्याप्त हैं जैसे अग्नि के एक जगह प्रगट रूप में होते हुए भी उसकी सत्ता सब जगह व्याप्त रहती है। यही है ईश्वर में विरोधी धर्म का रहना। तभी तो वेद अर्थात् श्रुतियाँ उस ईश्वर को नेति-नेति कह करके पुकारती हैं। ईश्वर के साथ इति (अन्त) शब्द नहीं जुड़ सकता है क्योंकि श्रुतियाँ यदि यह कहती हैं कि ईश्वर एक है तो वह अनेक भी है, ईश्वर कोमल है तो वह कठोर भी है, ईश्वर संसार में है तो संसार से परे भी है, ईश्वर निर्गुण है तो वह सगुण भी हैं। श्रुतियाँ ईश्वर के साथ इति नहीं लगा सकती इसलिए न इति (नेति) कह कर ईश्वर को पुकारती हैं। यही है भगवान शिव का अमंगल भेष होते हुए भी मंगल का धाम होने का अभिप्राय, क्योंकि भगवान शिव के पास जो कुछ भी है वह सब एक दूसरे के विरोधी है।

इस प्रकार 'अशिव भेष शिव धाम कृपाला जब अपने बैल पर चढ़कर चले तब शिव को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ मन ही मन हँसने लगीं कि वर के योग्य तो दुलहिन मिलना संसार में कठिन ही होगा। भगवान विष्णु, ब्रह्मा आदि समस्त देवता और बारात के सभी लोग अपने-अपने वाहन पर चढ़कर चल दिये। देवताओं का समाज बहुत ही सुन्दर था परन्तु दूल्हा के अनुरूप बारात नहीं थी इसलिये—

दो०—विष्णु कहा असि विहँसि तब, बोलि सकल दिसि राज।
विलग-विलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज।। (१।९२)

भगवान विष्णु ने हँसकर कहा कि हे दिसिराज! दिशाओं के स्वामी सब लोग अपने-अपने समाज के साथ अलग-अलग होकर चलो, क्योंकि वर के अनुरूप यह बारात नहीं है या बारात के अनुरूप वर नहीं है। इसलिये साथ चलने में दूसरे लोग हम लोगों की हँसी उड़ाएँगे। भगवान विष्णु की बात सुनकर सभी देवताओं के मुख पर मुस्कान छा गई और सब लोग अपने-अपने समाज के साथ अलग होकर चलने लगे।

व्यंग से युक्त भगवान विष्णु की बातें सुनकर महेश मन ही मन हँस पड़े और गणों को आदेश दिया कि सब लोग देवताओं से अलग होकर और एकत्रित होकर मेरे साथ चलो। भगवान शिव का अनुशासन सुनकर ही सब ने आकर प्रभु भगवान शिव के चरण कमलों में प्रणाम किया। उस समय भगवान भूत भावन का समाज देखने योग्य था।

चौ०—नाना वाहन नाना भेषा, विहँसे शिव समाज निज देखा।
कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू, बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।
छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन, कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर, सब सद्य सोनित तन भरे।

खर स्वान सुअर श्रृगाल मुख गन, वेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिशाच योगि, जमात बरनत नहि बनै।

सो०—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति विपरीत, बोलहिं वचन विचित्र विधि। (१।९३)

सो०—जस दूलह तस बनी बराता, कौतुक विविध होहिं मग जाता।

अर्थ—नाना प्रकार के वाहनों पर नाना प्रकार के भेषधारी अपने समाज को देखकर भगवान शिव हँसे। कोई बिना मुख का है तो किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ पैर का है तो किसी के बहुत हाथ पैर हैं, कोई बिना आँख का है तो किसी के बहुत सी आँखें हैं, कोई बहुत हृष्ट-पुष्ट है तो किसी का शरीर अत्यन्त क्षीण है, कोई अत्यंत मोटा और बहुत ही पवित्र है तो किसी ने बहुत ही अपवित्र गति बना रखी है, कोई बहुत ही डरावना भूषण पूरे शरीर में खून लपेटे हुए मनुष्यों के सिर जिनसे खून टपक रहा है ऐसे मुंडों की माला पहिने हुए गधा, कुत्ता, सुअर, सियार जैसे मुख वाले अनेकों जिनकी गिनती नहीं हो सकती है, ऐसे भूत प्रेतों की जमात नाचते-गाते भगवान शिव के साथ चले आ रहे हैं, क्योंकि भूत प्रेत ही तो ठहरे। उन प्रेत योनियों में भटकती हुई प्रेतात्मा को कभी इस तरह की प्रसन्नता तो मिलती हैं नहीं क्योंकि ये तो भयंकर यातनामय योनियाँ मानी गई हैं। इन प्रेतों को कभी भी किसी प्रकार के मंगलमय कार्यों में शामिल होने का अधिकार नहीं दिया गया है। ये तो भूतभावन भगवान शिव की विशेष कृपा से ही इन प्रेतों को यह अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिये ये आज बड़े प्रसन्न हैं। जैसी दूलह भगवान शंकर की भेष भूषा है उसी प्रकार उनकी बारात भी। इसलिये दोनों मिलकर एक विचित्र कौतुक करते हुए मार्ग में चले जा रहे हैं।

भावार्थ—यहाँ भगवान शंकर विवाह जैसे मंगल मय कार्य में घोर अमंगलकारी भूत प्रेतों को साथ लेकर चल रहे हैं। इससे भगवान शंकर यह शिक्षा दे रहे हैं कि मनुष्यों! यह घोर अमंगलकारी भूत प्रेत मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं क्योंकि मैं तो प्रभु का वह मंगलमय राम नाम जपता हूँ जो मंगल का भवन है और समस्त अमंगलों को दूर करने वाला है।

चौ०—भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ।

भाव से, कुभाव से (बिना मन से), अनख (शत्रुता) से और आलस्य से जपने पर भी दशों दिशाएँ मंगलमय हो जाती हैं अर्थात् किसी भी प्रकार से मन लगे या न लगे राम नाम का जाप करना चाहिए। इस घोर कलियुग में राम नाम से बढ़कर दूसरा कोई शक्तिशाली उपाय नहीं है। यद्यपि जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त करने के अनेक उपाय हैं परन्तु वे कैसे हैं जिसके लिये एक बहुत ही प्रचलित एक दोहा है :

दो०—राम नाम एक अंक है, सब साधन है सून।
अंक गए कछु हाथ नहि, अंक रहे दस गून।।

राम नाम को एक से लेकर नौ तक अंक के समान समझना चाहिए और सभी साधनों को शून्य (जीरो) के समान समझना चाहिए। यदि शून्य किसी अंक के साथ है तब वहाँ दस गुना माना जाता है और यदि वह किसी अंक के साथ नहीं है तब वह निरर्थक है। ठीक

उसी प्रकार आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, तपस्या, अन्य जितने भी साधन हैं ये सब शून्य के समान हैं। यदि ये राम नाम के साथ जुड़ जाते हैं तब तो ये सभी साधन दसगुना फल देने वाले हो जाते हैं और यदि ये राम नाम के बिना हैं तो उन्हें शून्य के समान निरर्थक ही समझना चाहिए। इस कलियुग में राम नाम से बढ़कर सभी प्रकार के फलों को देने वाला दूसरा और कोई उपाय नहीं है। राम नाम इस लोक में माता-पिता की तरह से और परलोक में गुरू की तरह से अपने भक्त की रक्षा करता है।

चौ०—राम नाम कलि अभिमत दाता, हित परलोक लोक पितु माता।

तभी तो भगवान शंकर से लेकर इस कलियुग में जितने भी संत हुए हैं चाहे वे किसी भी विचार धारा के रहे हों उनमें से अधिकांश संतों ने राम नाम की महिमा गाया है और भगवान शंकर तो अनन्त काल से राम नाम का जाप कर रहे हैं। तभी तो पार्वती जी कहती हैं हे कामदेव के शत्रु! तुम तो अनन्त काल से बड़े आदर के साथ रात दिन राम नाम का जाप करते रहते हो।

चौ०—तुम पुनि राम नाम दिन राती, सादर जपहु अनंग अराती।

अतः इस प्रकार भगवान शंकर अपने विवाह रूपी मंगल मय कार्य में घोर अमंगल-कारी भूत प्रेतों को साथ लेकर चल रहें हैं और यह मानव समाज को शिक्षा दे रहे हैं कि मनुष्यों! इन अमंगलों से मत डरो। परम मंगलमय उस परमपिता परमात्मा पर और उनके परम मंगलमय नामों पर विश्वास करो।

चौ०—इहाँ हिमांचल रचेउ बिताना, अति विचित्र नहि जाइ बखाना।
शैल सकल जहं लगि जग माहीं, लघु विशाल नहि वर्णि सिराहीं।
वन सागर सब नदी तलावा, हिमगिरि सब कंह नेवति पठावा।
काम रूप सुन्दर तनधारी, सहित समाज सहित वर नारी।
गए सकल तुहिनाचल गेहा, गावहिं मंगल सहित सनेहा।
प्रथमहि गिरि बहु गृह संवराए, यथा योग तंह तंह सब छाए।

यहाँ महाराज हिमांचल ने बहुत ही सुन्दर मण्डप बनाया। वह अति ही सुन्दर था जिसका कि वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस पृथ्वी पर छोटे और बड़े जितने भी पहाड़ थे, बन, समुद्र, सभी नदियाँ और सभी तालाब महाराज हिमांचल ने सबको निमंत्रण भेजा। वे छोटे-बड़े पहाड़, जंगल, समुद्र, नदियाँ, तालाब सभी अपनी इच्छा से कामदेव और रति के समान सुन्दर शरीर धारण करके अपने-अपने समाज के साथ महाराज हिमांचल के घर अनेकों प्रकार के मंगल गीत गाते हुए गये। महाराज हिमांचल ने इन सबों के लिये जो जिस योग्य था उसके अनुसार उनके ठहरने के लिये पहले से सुन्दर घर बनवा कर रखे थे। उन्हीं में उन सबों को निवास के लिये स्थान दिया।

इस प्रसंग के अनुसार पहाड़, नदी, समुद्र, सरोवर, लता, वृक्ष इन समस्त जड़ योनियों में भी आत्म दर्शन होता है। अर्थात् इन समस्त जड़ योनियों में भी हम मनुष्यों जैसी आत्मा की स्थिति है। यह प्रमाण मिलता है। इन आत्माओं को भी कभी हम जैसे ही मनुष्य शरीर प्राप्त था परन्तु मनुष्य शरीर का दुरुपयोग करने के कारण ही इन्हें जड़ योनियाँ प्राप्त हो गई।

ईश्वर की जब बहुत बड़ी कृपा होती है तब जीव को मनुष्य शरीर प्राप्त होता है ।

दूसरे पक्ष में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति का सबसे उच्चतम विकास मनुष्य का शरीर है और जब यह जीव मनुष्य शरीर को प्राप्त करने के बाद इसका सही उपयोग नहीं करता अर्थात् हाथ पैर नाक कान आदि इन इन्द्रियों से जब ईश्वर की पूजा नहीं करता और इन इन्द्रियों को जब एकमात्र संसारिक भोगों में ही लगाता है तब प्रकृति माता नाराज होकर धीरे-धीरे इन्द्रियों का हरण करने लगती हैं अर्थात् धीरे-धीरे जीव का पतन होने लगता है । पशु पच्चियों की योनियों में से होते हुए अन्त में पहाड़, नदी, तालाब, लता, वृक्ष आदि जड़ योनियों में पहुँच जाता है और जहाँ केवल एकमात्र अन्नमय कोष अर्थात् जड़ शरीर ही शेष रह जाता है । मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि इन जड़ योनियों में रहने वाली आत्माओं के पास केवल एक ही शरीर होता है अन्नम कोष ।

कोष पाँच होते हैं जैसे अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष । इन पाँचों में से चार गुणमय माने गए हैं और पाँचवा आनन्दमय कोष त्रिगुणातीत अर्थात् तीनों गुणों से परे माना गया है । जब कभी भगवान राम या कृष्ण के रूप में इस धरातल पर आते हैं तब इसी आनन्दमय शरीर में आते हैं और शेष जो चार गुणमय कोष अर्थात् शरीर हैं इन्हें क्रम से इस प्रकार समझना चाहिए । संसार की समस्त जड़ योनियों जैसे लता वृक्ष आदि में केवल एक ही अन्नमय कोष अर्थात् जड़ शरीर का विकास हुआ है इसलिए लता, वृच, पेड़, पौधा आदि में भी यद्यपि हम मनुष्यों जैसी ही आत्मा की स्थिति है तथापि केवल जड़ शरीर का ही विकास होने के कारण हम मनुष्यों की तरह से ये दुख सुख की अनुभूति नहीं कर सकते हैं । उसके बाद पशु पक्षी आदि इन अर्थ चैतन्य योनियों में दो शरीरों का विकास हुआ है अन्नमय कोष (शरीर) और प्राणमय कोष । ताकि इन पशु पक्षियों में अन्नमय कोष के साथ-साथ प्राणमय कोष अर्थात् शरीर का विकास हो चुका है इसलिये जब इन्हें मारने के लिये हम ईंटा पत्थर या डंडा उठाते हैं तो ये भाग जाते हैं क्योंकि इनको प्राण का भय लगता है । फिर भी ये हम मनुष्यों की तरह से संकल्प विकल्प या हानि लाभ पर विचार नहीं कर सकते क्योंकि संकल्प विकल्प करने वाला मनोमयकोष अर्थात् शरीर का विकास इनमें नहीं हुआ है । परन्तु हम मनुष्यों में अन्नमय कोष प्राणमय कोष के साथ-साथ मनोमय कोष का भी विकास हो चुका है इसलिये हम अपने हानि लाभ पर विचार या संकल्प विकल्प कर सकते हैं और हम मनुष्यों में भी महामानव बड़े-बड़े सन्त महात्माओं में जैसे सूर तुलसी मीरा कबीर इत्यादि सन्तों में विज्ञानमय कोष का भी विकास हो चुका था । इसलिये वे त्रिकाल दर्शी कहाते थे । और आप हम उनकी पूजा करते हैं और अन्त में आनन्द-मय शरीर जिसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ ।

इस उपर्युक्त दर्शन के अनुसार पहाड़, नदी, समुद्र, लता, वृक्ष आदि जड़ योनियों में भी हम जैसी ही आत्मा की स्थिति निश्चित रुप से है परन्तु साधारण मनुष्य इन आत्माओं का साक्षात्कार नहीं कर सकता । क्योंकि साधारण मनुष्य तो इस चैतन्य योनि मानव शरीर में स्थित आत्मा को अर्थात अपनी ही आत्मा को नहीं देख सकता है तो भला लता, वृक्ष आदि जड़ योनियों में स्थित आत्मा का दर्शन कैसे कर सकता है ।

इस अखिल जगत के अनन्त कोटि जड़ एवं चेतन योनियों में स्थित आत्माओं का दर्शन तो कोई योग सिद्ध पुरुष ही कर सकता है जो कि पंच महाभूतों पर विजय प्राप्त करके आत्म स्वरूप में स्थित हो गए हैं या कोई सिद्ध महात्मा जो सम्पूर्ण जगत में अपने इष्टदेव का ही दर्शन करते हैं और ऐसे ही महान सिद्ध पुरुषों के आवाहन पर ये आत्माएँ प्रगट भी हो सकती हैं। अस्तु महाराज हिमांचल भी ऐसे ही योग सिद्ध पुरुषों में से एक थे। इसलिये महाराज हिमांचल के आवाहन करने पर जंगल, समुद्र, नदियाँ, तालाब और छोटे बड़े पहाड़ कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण करके अपने-अपने समाज और पत्नियों के साथ प्रगट होकर महाराज हिमांचल के घर आए।

चौ०—पुर शोभा अवलोकि सुहाई, लागइ लघु विरंचि निपुनाई।

उस समय महाराज हिमांचल के नगर की शोभा देखकर ब्रह्मा की निपुणता छोटी लगने लगी। उस समय वहाँ की शोभा इतनी अधिक हो रही थी मानो ब्रह्मा की सृष्टि की सभी शोभा वहीं एकत्रित हो गई हो। वहाँ के बन, बगीचे, कूप, सरोवर और नदियाँ इनकी सुन्दरता का वर्णन ही भला कौन कर सकता है। प्रत्येक घर को बहुत ही सुन्दर मंगमलय वस्तुओं से सजाया गया है। उस समय वहाँ के सुन्दर और चतुर स्त्री पुरुष अपनी छवि से बड़े-बड़े मुनियों के मन भी मोह रहे थे।

दो०—जगदम्वा जंह अवतरीं, सो पुर बरनि कि जाय।
ऋद्धि-सिद्धि सम्पत्ति सुख, नित नूतन अधिकाय।। (१।८४)

स्वयं जगदम्बा जहाँ अवतरित हुई हैं उस नगर की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह सब थोड़ी ही है। जहाँ ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित्य नये-नये बढ़ रहे हों भला उसका वर्णन कौन कर सकता है। इस संसार की प्राकृतिक सुन्दरता के जो कारण हैं और प्राकृतिक सुन्दरता ही जिसका कार्य है वह मूलाप्रकृति ही बेटी बन करके जिसके घर में प्रगट हो गई हों उन महाराज हिमांचल के वैभव और उनके नगर की प्राकृतिक सुन्दरता की कोई कहाँ तक प्रशंसा कर सकता है।

लोगों ने जब सुना कि नगर के समीप बारात आ गई है तब सभी लोग वस्त्राभूषणों को पहन कर और अपने-अपने वाहनों को सजाकर आदर के साथ अगवानी करने के लिये चल दिए। बारातियों में देवताओं का समाज सबसे आगे चल रहा था जिसे स्वागत करने वालों ने जब देखा तब हृदय में हर्ष हुआ और जब भगवान श्रीहरि को देखा तब तो सभी को अत्यन्त सुख हुआ। इतने में ही शिव समाज अर्थात भूत प्रेतों का दल सामने आया फिर तो क्या कहना था, देखते ही हाथी, घोड़े इत्यादि जो स्वागत के लिये साथ में आए थे बिचक कर भाग गए। स्वागत करनेवालों में जो समझदार बड़े लोग थे वे तो धैर्य बाँध कर रुके रहे परन्तु बच्चे सब भाग गए। घर पहुँचने पर जब बच्चों के माता-पिता ने पूछा तो भय से काँपते हुए बच्चों ने कहा क्या कहें कहने लायक बात नहीं है। क्या यह बारात है या यमदूतों का दल है और वर तो पागल है। पूरे सिर में साँप लपेट रखा है। गले में मुंडों की माला पहिन रखा है और विभूषन के नाम पर पूरे शरीर में भस्म लपेट रखा है। सिर में बड़ी-बड़ी जटाएँ और नंगा ही है इसलिये देखने में बड़ा भयंकर लगता है

और साथ में भूत प्रेत पिशाच योगिनी और विकट मुख वाले निशाचरों को लिये हुए हैं। इसलिये ऐसे भूत प्रेत राक्षसों का दल बारात में आया हुआ है कि अब तो लोगों का जीना भी असम्भव-सा लगता है। जिसका बहुत ही विशाल पुण्य होगा वही इन बारातियों से बच पायगा और वही उमा का विवाह देख पायगा। कुछ ही क्षणों में बच्चों ने घर-घर में यह बात फैला दिया परन्तु उनके माता-पिता बच्चों की बात सुनकर और भगवान शंकर के समाज को समझ कर मन ही मन हँसते हुए बच्चों को समझाया कि बच्चों! मत डरो, निर्भय हो जाव।

दो०—समुझि महेश समाज सब, जननि जनक मुसकाहिं।
बाल बुझाए विविधि विधि, निडर होहु डर नाहिं ॥ (१।९५)

इस उपर्युक्त प्रसंग के अनुसार भगवान शंकर की बारात तीन श्रेणियों में विभक्त है। प्रथम श्रेणी में भगवान विष्णु एवम् उनका समाज, द्वितीय श्रेणी में देवताओं का समाज और तृतीय श्रेणी में भगवान शिव का समाज।

इसका अभिप्राय यह है कि बारात त्रिगुणात्मक है। इसमें भगवान विष्णु और उनके समाज को सत्वगुण समझना चाहिए। ब्रह्मा के समेत देव समाज को रजोगुण और भगवान शिव के समाज को तमोगुण समझना चाहिए। जब स्वागत करने वालों ने देव समाज को देखा तब प्रसन्नता हुई और जब भगवान विष्णु और उनके समाज को देखा तब विशेष प्रसन्नता हुई परन्तु भगवान शिव के समाज भूत प्रेतों को देखा तब सब भय से व्याकुल हो उठे। इससे यह समझना चाहिए कि मानव जीवन में ही स्वर्ग और नरक के सुख-दुखों को भोगा करता है। जिस समय मन में सत्व गुण की प्रधानता होती है उस समय मन अत्यंत प्रसन्न होता है यही है स्वर्ग या स्वर्गीय सुखों का उपभोग। जिस समय मन में तमोगुण की प्रधानता होती है उस समय मन क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, जलन, द्वेष के कारण संतप्त हो उठता है अर्थात् इन सबों के कारण मन जलने लगता है यही है नर्क या भयंकर नारकीय यातनाओं का कष्ट।

इससे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हम अपने जीवन में सत्वगुण को बढ़ाएँ। ज्यों-ज्यों हमारे जीवन में सत्वगुण की प्रधानता होगी जायगी त्यों-त्यों हमारा जीवन स्वर्गीय होता जायगा और ज्यों-ज्यों हम अपने जीवन में तमोगुण को कम करते जायेंगे त्यों-त्यों हम अपने जीवन में नारकीय यातनाओं से मुक्त होते जायेंगे। जिस दिन हम पूर्ण रूप से तमोगुण पर विजय प्राप्त कर लेंगे उस दिन हमारा जीवन पूर्ण रूप से स्वर्गीय हो जायगा अर्थात् हम मुक्त हो जायेंगे। यही है बारातियों को देख कर बच्चों के डरने और उनके माता-पिता बड़ों के प्रसन्न होने का अभिप्राय।

चौ०—लै अगवान बरातहिं आए, दिये सबहिं जनवास सुहाए।

स्वागत करने वाले लोगों ने बारातियों को लाकर सुन्दर जनवासा अर्थात रहने का स्थान दिया। महारानी मयना सुन्दर आरती सजा रही हैं साथ में स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गल गीत गा रही हैं। सोने की थाल हाथ में सुशोभित हो रही है। प्रसन्नता के साथ भगवान शिव की परिछन करने के लिये चलीं। परन्तु विकट भेष में रुद्र को देखकर स्त्रियों के हृदय में विशेष भय उत्पन्न हो गया। अत्यंत भय के कारण सब भाग कर भवन में चली गईं और महेश भी

जनवासा में चले गए। यहाँ भगवान रुद्र का अत्यंत भयावना रूप देख कर सभी स्त्रियाँ डर गईं और डरकर भाग गईं। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि महारानी मयना और उनकी सखी-सहेलियों ने कभी ऐसी कल्पना भी नहीं की थी कि उमा का वर ऐसा होगा क्योंकि कहाँ एक ओर महान सुन्दरी उमा और दूसरी ओर महा डरावना रूपधारी भगवान रुद्र। इसलिए महारानी मयना के हृदय में बड़ा भारी दुख उत्पन्न हुआ। गिरीश कुमारी पार्वती को बुला कर अधिक स्नेह के कारण गोद में बिठा लिया और श्याम कमल के समान आँखों में आँसू भर कर रोती हुई कहने लगी।

चौ०—जेहि विधि तुम्हहिं रूप अस दीन्हा, तेहि जड़ वर वाउर कस कीन्हा।
छं०—कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुम्हहि सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुर तरुहिं सो वरवस बबूरहिं लागई।
तुम सहित गिरि तें गिरौ पावक जरौं जलनिधि मंह परौं।
घर जाउ अपयश होउ जग जीवत विवाह न हौं करौं।
दो०—भई विकल अवला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि विलाप रोदति बदति सुता सनेह सम्हारि॥ (१।९६)

हे बेटी उमा ! जिस विधि ने तुमको इतना सुन्दर रूप दिया उस जड़ ने तुम्हारे लिये पागल वर क्यों बनाया। जो फल कल्प वृक्ष में लगना चाहिए वह बरबस बबूल में क्यों लग रहा है ; इसलिये तम्हारे सहित पहाड़ से गिर कर आग में जल कर या समुद्र में डूब कर प्राण दे दूँगी। घर उजड़ जाय या यश नष्ट हो जाय पर मैं जीते जी उस पागल वर के साथ विवाह नहीं होने दूँगी। गिरिनारि अर्थात् महारानी मयना को दुखी देख कर सभी स्त्रियाँ व्याकुल हो गई।

इस प्रकार अपनी बेटी उमा के स्नेह को स्मरण करके महारानी मयना रोती बिलखती हुई कहती हैं कि नारद का मैंने क्या बिगाड़ा था जिससे कि नारद ने मेरा बसा हुआ घर उजाड़ दिया। ऐसा उपदेश अर्थात् पागल वर के लिये तपस्या करने का उपदेश मेरी बेटी उमा को दिया। सत्य ही है कि उन्हें मोह और माया नहीं क्योंकि वे अर्थात् नारद उदासीन हैं, न उनके पास धन है, न धाम है और न संतान है तभी तो वे दूसरों का घर उजाड़ते फिरते हैं। न उन्हें लाज है, न भय है। जैसे बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा को नहीं जानती है वैसे ही नारद क्या जाने कि संतान के सुख-दुख में माता पिता को कितना सुख-दुख होता है।

इस प्रसंग में महारानी मयना भगवान रूद्र का विकट रूप देखकर अर्थात् वाह्य रूप जो शिव के समाज के अनुरूप ही है और जिसे मैं पहले ही तमोगुण का रूप दे चुका हूँ उसे देखकर महारानी मयना अत्यंत दुखी हो उठी हैं और महारानी मयना का दुखी होना स्वाभाविक ही है क्योंकि यही तो तमोगुण का फल है। भगवान शिव का समाज और भगवान शिव की वाह्य भेष भूषा अमंगलकारी तो माना ही गया है, इसलिये जब तक हमारी दृष्टि भगवान शिव के वाह्य रूप तक ही सीमित है तब तक तो दुख होगा ही परन्तु जब हमारी दृष्टि भगवान शिव के तमोगुण प्रधान वाह्य रूप को पार कर जायगी और विशुद्ध सत्वगुण प्रधान उस कल्याण स्वरूप, आनन्द स्वरूप ब्रह्म अर्थात् शिव को देख सकेगी तब हमारा जीवन उस

आनन्द स्वरूप शिव को देखकर सदा-सदा के लिये आनन्दमय हो जायगा । अतः उस आनन्द स्वरूप शिव तक हम या हमारी दृष्टि पहुँच सके इसके लिये नारद जैसे सद्‌गुरू की आवश्यकता होती है, परन्तु ऐसे ब्रह्मवादी गुरू की पहचान भी तो कठिन है क्योंकि ऐसे सिद्ध महापुरुष तो वाह्य आडंबर से सर्वथा शून्य होते हैं । इसलिये तो महारानी मयना नारद जैसे महापुरुष को भला बुरा कह रही हैं यद्यपि इस समय महारानी मयना को अपनी बेटी उमा के स्नेह में डूबी होने के कारण नारद के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं है फिर भी वे जो कुछ कह रही हैं बहुत अंशो में सत्य ही कह रही हैं कि नारद को मोह और माया नहीं है, उदासीन हैं, उनके पास न घर है और न धन है । मयना का यह कथन अक्षरशः सत्य है नारद तो महात्मा हैं वहाँ मोह माया का क्या काम । नारद तो महान वीतरागी हैं उन्हें धन और मकान से क्या मतलब । नारद तो उदासीन हैं न उनका कोई शत्रु है न कोई मित्र है, वे तो प्राणी मात्र के कल्याण करने के लिये सम भाव से संसार में विचरण करते रहते हैं । यही है भगवान रूद्र का विकट रूप देखकर दुखी होने का और नारद को भला बुरा कहने का अभिप्राय ।

पार्वती अपनी माता को विकल देखकर विवेक से युक्त मधुर वाणी बोलीं हे माता ! विधाता ने जो भाग्य में लिख दिया वह बदल नहीं सकता । ऐसा विचार करके आप सोच मत करें । यदि मेरे भाग्य में ही पागल पति लिखा था तो दूसरों को दोष लगाने से क्या लाभ ? हे माता ! अब व्यर्थ में कलंक क्यों लेती हैं । क्या विधाता ने जो लिख दिया उसे आप मिटा सकती हैं । इसलिये हे माता ! अब आप इस करुणा को छोड़िये क्योंकि अब अवसर नहीं है । मेरे भाग्य में जो दुख-सुख लिखा है वह तो मैं जहाँ भी जाऊँगी वहीं मिलेगा ।

इस प्रकार से उमा के विनय से युक्त कोमल वचनों को सुनकर सभी स्त्रियाँ सोचने लगी और बहुत प्रकार से विधाता को दोष देती हुई आँखों से आँसू बहाने लगी ।

इस संसार में पिछले प्रारब्ध के अनुसार ही जीव को दुख-सुख प्राप्त होते रहते हैं । अपनी माता मयना को अत्यंत दुखी देखकर पार्वती जी मीमांसा दर्शन का आश्रय लेकर समझाती हैं क्योंकि मीमांसा दर्शन का यही मत है कि प्रत्येक जीव अपने प्रारब्ध के अनुसार ही सुख दुखों को भोगा करता है और ये प्रारब्ध इतने प्रबल होते हैं कि सामान्य मनुष्य तो क्या बड़े से बड़े महापुरुष भी सरलता से प्रारब्ध को नहीं बदल सकते । प्रारब्ध अर्थात् कर्म या तो भोगने से क्षीण होता हैं या ब्रह्म ज्ञान के उदय होने पर । परन्तु ब्रह्म ज्ञान तो कोई करोड़ों में बिरला ही प्राप्त कर पाता है । शेष करोड़ों जीवों को तो प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है । इसलिये इससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि संसारिक भोग वस्तुओं के लिये प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि संसारिक भोग वस्तु तो प्रारब्ध के अनुसार अपने आप मिल जायेंगे जैसे दुख न चाहने पर भी प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हो जाता है । वैसे ही यदि प्रारब्ध में सुख है तो अवश्यमेंव प्राप्त होगा । प्रयास तो एकमात्र भगवत् प्राप्ति के लिये करना चाहिए क्योंकि ईश्वर प्रारब्ध से नहीं मिलते हैं ।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने पार्वती जी के द्वारा एक ओर तो मीमांसा मत की स्थापना कराया और दूसरी ओर अपनी माता मयना को समझाती हुई पार्वती जी कहती हैं कि माता आप दूसरों को दोष लगाकर क्यों व्यर्थ में कलंक लेती हैं, यदि मेरे भाग्य में ही पागल पति

लिखा है तो इसमें किसी को क्यों दोष दिया जाय ? क्योंकि यदि मुझे प्रारब्ध के अनुसार दुख मिलना ही है तो मैं जहाँ भी जाऊँगी मुझे मिलेगा क्योंकि कोई किसी के सुख-दुख को बाँट नहीं सकता । इसलिये हे माता ! आप क्यों व्यर्थ में दुखी होती हैं ।

इस प्रकार उमा के उपदेश से वहाँ उपस्थित सभी स्त्रियों के साथ मयना को कुछ संतोष हुआ । उसी समय सप्तऋषियों के साथ नारद जी वहाँ आते हैं ।

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु ऋषि सप्त समेत ।
समाचार सुनि तुहिनि गिरि, गवने तुरत निकेत ।। (१९७)

उसी समय सप्तऋषियों के सहित नारद जी वहाँ आए और जब यह समाचार महाराज हिमांचल ने सुना तो शीघ्र ही हिमांचल भी घर में पहुँच गए । तब नारद ने सभी को समझाया और पार्वती के पूर्व जन्म का चरित्र सुनाया । हे मयना ! तुम मेरी सत्य वाणी सुनो । जगदम्बा ही तुम्हारी बेटी बनी हुई हैं । तुम्हारी बेटी अजा अर्थात् अजन्मा, अनादि-आरम्भ से रहित, शक्ति और अविनाशिनी—जिसका नाश न होता हो, तथा सदैव भगवान शंकर के वाम भाग में निवास करने वाली हैं । जगत को पैदा करने वाली, पालन करने वाली, संहार करने वाली और अपनी इच्छा से लीलामय शरीर धारण करने वाली हैं । सबसे प्रथम जन्म तुम्हारी बेटी ने दक्ष के घर में लिया था । तब इनका नाम सती था और सुन्दर शरीर पाया था । वहाँ भी सती का विवाह शंकर से ही हुआ था । यह कथा सभी संसार में प्रसिद्ध है । परन्तु एक बार भगवान शिव के साथ आते हुए रघुकुल कमल के लिये सूर्य के समान श्रीराम को देखकर इन्हें मोह हो गया । उस समय भगवान शिव ने इन्हें बहुत समझाया परन्तु ये नहीं मानी और भ्रम के वश में होकर सीता जी का रूप बना लिया । इसलिये भगवान शंकर ने इन्हें त्याग दिया । तब सती ने पति के विरह से दुखी होकर पिता के यज्ञ में योगाग्नि से जलकर शरीर त्याग दिया । अब उसी सती ने तुम्हारे घर में बेटी के रूप में जन्म लिया है और पुनः अपने पति शिव के लिये कठोर तपस्या किया । गिरिजा सदैव भगवान शंकर की प्रिया हैं, ऐसा जानकर संदेह का त्याग करो । नारद के बचन सुनकर सभी का संदेह मिट गया और क्षण मात्र में ही सारे नगर में यह समाचार फैल गया ।

दो०—सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा विषाद ।
छन मंह व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ।। (१९८)

नारद के वचन सुनकर सभी का सन्देह दूर हो गया । इसका अभिप्राय यह है कि नारद नाम का अर्थ ही है ज्ञान देने वाला । नारद प्राणी मात्र के गुरू हैं और गुरू के बचन को सूर्य की किरणों के समान माना गया है, जबकि मोह रात्रि है । जैसे सूर्य के उदय होने पर ही रात्रि दूर हो जाती है उसी प्रकार गुरू सूर्य है और गुरू के वचन समूह ही सूर्य-किरण के समूह के सदृश हैं । जैसे सूर्य किरणों के सामने रात्रि एक क्षण भी नहीं टिक सकती है उसी प्रकार गुरू के बचन के सामने मोह रात्रि क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकती है । इसलिये गोस्वामी जी ने बाल काण्ड में गुरू की वन्दना करते हुए लिखा है :—

सो०—बन्दउं गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि ।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर ।। (१५)

अतः नारद जो प्राणी मात्र के गुरू हैं उनके उपदेश से मयना के समेत वहाँ उपस्थित सभी स्त्रियों का मोह दूर हो गया।

मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि भगवान शिव का वाह्य रूप जो तमोगुण प्रधान होने के कारण अशिव अर्थात् अमंगलकारी है, उसे हमारी दृष्टि पार करके शुद्ध सत्वगुण स्वरूप शिव को देख सके इसके लिये किसी ब्रह्म ज्ञानी गुरू की आवश्यकता होती है। सो नारद से बढ़कर ब्रह्म ज्ञानी गुरू और कौन हो सकता है। मयना भगवान शिव और पार्वती के यथार्थ रूप को नहीं जानती थी और भगवान शिव के वाह्य रूप को देखकर और पार्वती को एकमात्र अपनी बेटी ही समझ कर मोह के कारण दुखी हो रही थी। परन्तु जब नारद ने शिव-पार्वती के यथार्थ रूप का ज्ञान कराया तो मयना के समेत वहाँ उपस्थित सभी स्त्रियाँ सुखी हो गईं।

तब मयना और हिमांचल आनंदित हो गए और बार-बार पार्वती के चरणों की वन्दना करने लगे। स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बूढ़े नगर के सभी लोग प्रसन्न हो गए और नगर में स्थान-स्थान पर विवाह के उपलक्ष में मंगल गान होने लगे। बारातियों के लिये पहले से ही बहुत सुन्दर भोजन तैयार था। स्वयं अन्नपूर्णा अर्थात् पार्वती जिस घर में रह रही हों उस घर के भोजन की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। अब ब्रह्मा विष्णु के समेत बारात में आए हुए सभी लोगों को सप्रेम भोजन के लिये बुलाया गया। भोजन के लिये आए हुए सभी बाराती विविध प्रकार की पंक्तियों में बैठ गए और परसने वाले परसने लगे। स्त्रियों को जब मालूम हुआ कि देवता लोग भोजन कर रहे हैं तब बहुत ही कोमल वाणी में मीठी गालियों को अधिक से अधिक सुनने की इच्छा से देवता लोग बहुत धीरे-धीरे भोजन कर रहे हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि भोजन के समय में जो आनन्द बढ़ा करोड़ों मुख से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। भोजन के बाद जब सब ने हाथ मुँह धो लिया तब सबको पान दिया गया। सब लोग पान खाते हुए अपने-अपने निवास स्थान पर चले गए।

इस प्रसंग में ब्रह्मा विष्णु के समेत सभी देव समाज को भोजन करते समय अति सुन्दर रस भरी गालियाँ दी गईं जिसे सुन कर देव समाज को अपूर्व सुख मिला। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या गालियों से भी सुख मिल सकता है जब कि गालियों को सुनकर मनुष्य क्रोध से तिलमिला उठता है। उत्तर—हाँ, गालियों से सुख मिल सकता है यदि सुन्दर समय हो और गालियाँ देने वाली भी कोई सुन्दरी बाला हों। फिर तो वे गालियाँ सुन्दर समय में सुन्दरी ललनाओं के मुख से मीठी लगेंगी ही जब कि यही गालियाँ दुर्जनों के मुख से निकलने पर हृदय पर भारी चोट पहुँचाती हैं जिससे हृदय उद्विग्न हो उठता है और हम प्रतिशोध के लिये तैयार हो जाते हैं। परन्तु गाली देने वाला यदि कोई प्रियजन हों तो वह गाली अवश्य मीठी लगेगी या संयोग से कहीं ससुराल हो और गालियाँ देने वाली भी कहीं साली-सरहज हों तब तो वे गालियाँ मन में अवश्य गुदगुदी पैदा करेंगी और वह गुदगुदी भी ऐसी होगी कि आप चाहेंगे कि ये सुन्दरी ललनाएँ अपनी गाली रूपी नवीन कमल के समान कोमल करों से मेरे हृदय को सहलाती ही रहें।

अतः भारतीय संस्कृति में विवाह के पूर्व या पश्चात् बारात में आए हुए लोग जब भोजन कर रहे हों तब कन्या पक्ष की महिलाएँ बारातियों, के नाम या उनके माता-

पिता के नाम ले लेकर व्यंग से युक्त गालियाँ देती हैं। यह परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है।

मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि गालियाँ रसभरी होती हैं जिसे सुनकर भोजन करने वालों को बड़ी प्रसन्नता होती है और ऐसा नियम है भोजन प्रसन्न मन से करना चाहिए। भोजन के समय मन में किसी प्रकार की अप्रसन्नता, असंतोष, ईर्ष्या, जलन आदि नहीं होनी चाहिए क्योंकि जो भी हम भोजन करते हैं उसका तीन भाग बनता है। प्रथम भाग से मन बनता है, दूसरे भाग से रस बनता है रस से ही रक्त, मांस, चर्बी, मज्जा हड्डी, और वीर्य बनता है और तीसरा भाग मल बन करके बाहर निकल जाता है। इसलिये भोजन के समय में जैसी मन की स्थिति रहती है उस समय के भोजन का उसी प्रकार का प्रभाव मन और शरीर पर पड़ता है। यही अभिप्राय है विवाह के पूर्व या पश्चात् भोजन के समय सुन्दरी युवतियों का रस भरी गालियाँ देने का।

दो० बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिवाह कर, पठए देव बोलाइ ॥ (१।९१)

तब मुनियों ने जबकि सब लोग भोजन करके अपने-अपने निवास स्थान पर चले गए महाराज हिमांचल को आकर लगन सुनाया। विवाह का समय हो गया है यह देखकर बोलावा भेज कर आदर के साथ सभी देवताओं को बुलवाया और यथा योग्य सभी को बैठने के लिये आसन दिया। वेद विधि से विवाह के लिये सुन्दर वेदी तैयार की गई और साथ ही स्त्रियाँ सुन्दर एवम् मंगल गीत गाने लगीं। बहुत दिव्य एवं सुन्दर सिंहासन जिसे स्वयं ब्रह्मा ने बनाया था, उस पर भगवान शिव ब्राह्मणों को और अपने इष्टदेव श्री राम को क्रम से प्रणाम और हृदय में स्मरण करके बैठे। उसके बाद मुनियों ने उमा को बुलवाया। तब सखियाँ श्रृङ्गार करके उमा को लिवा लाईं। उस समय की सुन्दरता का वर्णन भला कौन कवि कर सकता है। उस सुन्दर रूप को देखकर देवता लोग मोहित हो गए परन्तु भगवान शिव की पत्नी और जगदम्बा जानकर सभी देवताओं ने मन ही मन प्रणाम किया। गोस्वामी जी कहते हैं कि सुन्दरता की सीमा भवानी के रूप का करोड़ों मुख से बखान नहीं किया जा सकता है। जगद्जननी की उस महाशोभा को जब श्रुति शेष और सरस्वती को भी कहने में संकोच होता है तो भला मैं मन्द बुद्धि वाला तुलसीदास कैसे कह सकता हूँ। सुन्दरता की खान माता पार्वती मण्डप के मध्य में जहाँ शिव बैठे हैं वहाँ गईं। अधिक संकोच के कारण पति के उन चरण कमलों को नहीं देख पा रही हैं जहाँ उनका मन भंवरा बन कर लुभाया हुआ है।

इस प्रसंग में विवाह की तैयारी हो जाने पर और भगवान शिव के आकर बैठ जाने पर भगवती उमा को मुनियों के बुलाने पर सखियाँ लिवा लाईं। उस समय उमा के मन में जहाँ एक ओर अपने प्रियतम शिव के लिये प्रेम का समुद्र उमड़ रहा था वहीं दूसरी ओर भारी संकोच भी था। यह है एक दूसरे से विरोधी धर्म। प्रेम और संकोच का निर्वाह तो भारतीय ललना ही कर सकती है जबकि यह संसार भर की प्रत्येक नारी के लिये अनिवार्य है, यदि वह आजीवन पति-पत्नी के संबंध को बनाये रखना चाहती है क्योंकि संकोच अर्थात् लज्जा पति-पत्नी के प्रेम में नवीनता पैदा करती रहती है और क्या चाहिए क्या? यही तो चाहिये।

मन सदा नित्य नवीन प्रेम चाहता है। जहाँ मन को नवीनता में कमी अनुभव हुआ कि बस मन वहाँ से हटा और तभी से पति पत्नी के जीवन में नीरसता आरम्भ हो जाती है। यहाँ यही शिक्षा प्रत्येक नारी को भगवती उमा के जीवन से लेनी चाहिए। विवाह मण्डप में शिव पार्वती के बैठ जाने पर—

दो०—मुनि अनुशासन गणपतिहिं, पूजेउ शंभु भवानि।
कोउ सुनि संशय करइ जनि; सुर अनादि जिय जानि ।। (१।१००)

मुनियों की आज्ञा से शिव और पार्वती ने गणेश का पूजन किया। ग्रन्थकार कहते हैं कि इसे सुनकर कोई सन्देह न करे क्योंकि देवता तो अनादि होते हैं। वेद ने जैसा विवाह की विधि बताया है ऋषियों ने वह सब करवाया। उसके बाद गिरीश अर्थात् महाराज हिमांचल ने अपने हाथ में कुश और अपनी बेटी उमा का हाथ लेकर भगवान शिव को समर्पण कर दिया। महेश ने जब पाणिग्रहण कर लिया अर्थात् उमा के हाथ को अपने हाथ में ले लिया तब सभी देवता प्रसन्न हो गए। बड़े-बड़े मुनि लोग वेद मन्त्र का उच्चारण करने लगे और सभी देवता भगवान शंकर की जय-जयकार करने लगे। अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे और उस समय बहुत प्रकार से फूलों की वर्षा हुई। शिव पार्वती का विवाह हुआ। यह उत्सव सभी भुवनों में भर गया।

इस प्रसंग से सम्बन्धित तीन प्रश्न हैं। प्रथम प्रश्न—वैदिक परम्परा में प्रत्येक शुभ कर्म के आरम्भ में गणेश का पूजन क्यों होता है ?

द्वितीय प्रश्न—गणेश तो शिव पार्वती के पुत्र हैं फिर इस विवाह में स्वयं शिव पार्वती ने पूजन कैसे किया ?

तृतीय प्रश्न—भारतीय संस्कृति में विवाह का क्या महत्व है ?

उत्तर (क)—वैदिक परम्परा में प्रत्येक शुभ कर्म में पाँच देवताओं की पूजा की जाती है। वे पाँच देवता हैं :—(१) गणेश, (२) गौरी, (३) शिव, (४) सूर्य, (५) विष्णु।

इन पाँचों में सर्वप्रथम गणेश की पूजा इसलिये की जाती है कि गणेश का अर्थ है विवेक अर्थात् बुद्धि और बुद्धि की प्रधानता तो जीवन में होना ही चाहिए क्योंकि बुद्धि ही मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता मानी गई है। बुद्धि प्रधान होने के कारण ही इस संसार में मनुष्य योनि सबसे श्रेष्ठ योनि मानी गई है। इस संसार में हम जो कुछ भी देख रहे हैं लता, वृक्ष, नदी, पहाड़, पशु, पक्षी, मनुष्य के अतिरिक्त इस अखिल जगत में जो कुछ भी हैं इनमें केवल सत्य है क्योंकि सत्य के बिना यह जगत टिक नहीं सकता। सत्य के आश्रित होने के कारण ही यह जगत अनन्त काल से चला आ रहा है अर्थात् टिका हुआ है परन्तु मनुष्य इन सबों में श्रेष्ठ इसलिये है कि मनुष्य में सत्य के साथ-साथ चिद् भी है जो औरों में नहीं है और चिद् का अर्थ है ज्ञान अर्थात् बुद्धि। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य बुद्धि प्रधान जाति है। इसलिये हम सर्वप्रथम गणेश की पूजा करते हैं और गणेश के बाद हम शक्ति की पूजा करते हैं। क्योंकि केवल बुद्धि से ही काम नहीं चलता है। बुद्धि के साथ-साथ शारीरिक बल की भी आवश्यकता होती है। जिस मनुष्य के जीवन में बल और बुद्धि दोनों का समन्वय होता है उसे ही शिव अर्थात् कल्याण की प्राप्ति होती है इसलिये हम गणेश और शक्ति के

बाद शिव की पूजा करते हैं और अन्धकार ही अशिव अर्थात् अमंगल है और प्रकाश ही शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप है। इसलिए गणेश, शक्ति और शिव के बाद हम प्रकाश पुंज सूर्य की पूजा करते हैं। अनन्तकाल से यह जीव उस अमृतमय आनन्द स्वरूप ब्रह्म से विमुख होकर इस अन्धकार में अपने आनन्दमय स्वरूप को भूल कर दैहिक, दैविक, भौतिक इन त्रितापों से तप रहा था। परन्तु जब वह गुरु कृपा से 'तमसो माज्योतिर्गमय' कि हे परमात्मन् मुझे तम से प्रकाश में ले चलो, इस श्रुति वाक्य के अनुसार जब जीव अन्धकार से प्रकाश में पहुँचता है तब वह आनन्दस्वरूप ब्रह्म अर्थात् विष्णु को प्राप्त करके सदा-सदा के लिये आनन्द स्वरूप हो जाता है ? यही है क्रम से गणेश, शक्ति, शिव और सूर्य पूजा के बाद विष्णु पूजा का अभिप्राय।

उत्तर (ख)—शिव पार्वती ने अपने विवाह के अवसर पर गणेश का पूजन किया जब कि गणेश पार्वती के पुत्र माने जाते हैं। इससे यह प्रश्न उठता है कि यह कैसे ? समाधान :—वास्तव में गणाध्यक्ष अर्थात् गणेश केवल शिव पार्वती के पुत्र गजानन ही नहीं हुए हैं। प्रत्येक कल्प या प्रत्येक मनवन्तर में भिन्न-भिन्न गणाध्यक्ष होते हैं। गणाध्यक्ष या गणेश का अर्थ केवल पार्वती का पुत्र ही नहीं होता है। गजानन तो पार्वती के पुत्र निश्चित हैं परन्तु गणेश तो जो भी उस पद पर बैठता है वह सभी कहाता है। अतः पार्वती के पुत्र गजानन के पहले भी गणाध्यच थे। उसी गणाध्यक्ष अर्थात् गणपति का पूजन शिव पार्वती ने अपने विवाह के अवसर पर किया।

उत्तर (ग)—भारतीय संस्कृति में जहाँ एक ओर विरक्त जीवन की अपनी महत्वपूर्ण विशेषता है वहीं दूसरी ओर गृहस्थ जीवन की विशेषता भी कम नहीं है, और गृहस्थ जीवन में विवाह संस्कार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बचपन से लेकर विवाह के पूर्व तक का जीवन भारतीय संस्कृति के अनुसार साधनामय जीवन होता है और ब्रह्मचर्य ही वह साधना है, जिस साधना को भारत के प्रायः सभी युवा युवती यथाशक्ति साधते हैं। क्योंकि वैदिक परम्परा में चार आश्रमों की व्यवस्था है। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रय, द्वितीय गृहस्थ आश्रम, तृतीय वाणप्रस्थ आश्रम और चतुर्थ सन्यास आश्रम।

ब्रह्मचर्य का अर्थ—ब्रह्म का अर्थ है वीर्य और चर्य का अर्थ है उपाय साधना अर्थात् वीर्य (बल) की साधना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। क्योंकि 'नायमात्मा वीर्य हीनेन लभ्यः' बल-हीन मनुष्य परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता है। इस वाक्य के अनुसार बल अर्थात् वीर्य ही इस मानव जीवन में, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष हो, वह पोषक तत्व है जिससे बुद्धि से लेकर मानव जीवन के सभी आवश्यक गुण एवम् मोक्ष तक का पोषण होता है परन्तु यह महाव्रत जिसका पालन करना अत्यन्त दुष्कर है इसके लिये प्राचीन भारत में गुरुकुल की व्यवस्था थी जहाँ का वातावरण बहुत ही शुद्ध होता था। वहाँ रह कर युवा ब्रह्मचारी गुरु की देख-रेख में इस कठिनतम महाव्रत का पालन करते थे। इस प्रकार कम से कम १६ से १८ वर्ष की अवस्था तक युवतियां और २५ से ३० वर्ष की अवस्था तक पुरुष ब्रह्मचारी गण इस महाव्रत का पालन करते थे जिससे कि इस कहावत के अनुसार कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ बुद्धि वास करती है, के अनुसार बल और बुद्धि जब दोनों का पूर्ण विकास हो जाता था तब

भारतीय संस्कृति में वैदिक परम्परा के अनुसार पूर्ण विराग के अभाव में ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य आश्रम को छोड़कर ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था, क्योंकि पूर्ण विराग अर्थात् तीव्रतम विराग से युक्त ब्रह्मचारी तो गृहस्थ आश्रम और वाणप्रस्थ आश्रम ग्रहण किये बिना ही सन्यास आश्रम में चला जाता था। यद्यपि ब्रह्मचर्य साधना की समाप्ति ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में ही होनी चाहिये तथा विराग के अभाव में कर्म मार्ग से चलकर ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

अतः इस उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार भारतीय संस्कृति में विवाह का उद्देश्य केवल विषय सुख की प्राप्ति ही नहीं है अपितु ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का द्वितीय मार्ग है। इसलिये विवाह अग्नि एवम् गुरुजनों की साक्षी में वेदमन्त्रों के द्वारा कराया जाता है, क्योंकि जिस संबंध के मूल में धर्म होता है वह सम्बन्ध टिकाऊ होता है। ताकि पति पत्नी आपस में एक दूसरे को प्रेम का आदान-प्रदान करते हुए जीवन पर्यन्त एक साथ रह कर अपने लोक परलोक का निर्माण कर सकें इसलिये धर्म की ही जिसमें प्रधानता है वह विवाह संस्कार वेद मन्त्रों के द्वारा कराया जाता है। यही है वेद विधि से शिव पार्वती विवाह का अभिप्राय।

चौ०—हर गिरिजा कर भयउ विवाहू, सकल भुवन भरि रहा उछाहू।

शिव पार्वती का विवाह हुआ। यह उत्सव सभी भुवनों में भर गया। अब पार्वती की विदाई की तैयारी होने लगी। महाराज हिमाचल ने बहुत सी दासी दास घोड़े रथ हाथी नई ब्यायी हुई गौवें वस्त्र मणियां और अनेकों प्रकार की वस्तुएँ अन्न और सोने के बर्तन रथ में भर कर दहेज में दिया और पुनः हाथ जोड़कर महराज हिमांचल ने भगवान शिव से कहा कि हे शंकर आप तो पूर्ण काम हैं इसलिये मैं आपको दे ही क्या सकता हूँ। ऐसा कहकर हिमांचल ने शिव के चरण कमलों में प्रणाम किया। तब कृपा के सागर शिव ने सब प्रकार हिमांचल को संतुष्ट किया। उसके बाद महारानी मयना जिनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण है भगवान शिव के चरणों में लिपट कर बोलीं।

दो०—नाथ उमा मम प्राण सम, गृह किंकरी करेहु।
छमहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न वर देहु॥ (१।१०१)

हे नाथ! उमा मेरी प्राण के समान प्यारी बेटी है आप उसे गृह दासी के रूप में स्वीकार करें और मुझे प्रसन्न होकर यह वरदान दें कि यदि उससे कोई अपराध हो जाय तो उसे आप क्षमा करेगें। अपनी सास महारानी मयना के विनय से संतुष्ट होकर ऐसा ही होगा कह कर वरदान दिया और सब प्रकार से समझा कर अपनी सास को संतुष्ट किया तब मयना पुनः शिव के चरणों में प्रणाम करके घर के अन्दर गईं।

विवाह हो जाने के बाद महाराज हिमांचल ने अपनी बेटी और दामाद को बहुत से हाथी घोड़े रथ स्वर्ण अन्न वस्त्र आभूषण मणि माणिक्य और दास दासियां दहेज के रूप में दिया क्योंकि भारतीय संस्कृति में पुत्र को पिता का उत्तराधिकारी माना गया है। पिता के बाद उस पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र स्वाभाविक रूप से हो जाता है। तब यह प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय संस्कृति में ऋषियों ने पिता की सम्पत्ति में से कुछ पाने का अधिकार लड़कियों को दिया है कि नहीं?

उत्तर—इसीलिये भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से दहेज देने की प्रथा चली आ रही है अर्थात् शादी होने के बाद माता-पिता अपनी शक्ति के अनुसार बेटी को अधिक से अधिक धन दहेज के रूप में देते हैं। इस प्रकार दहेज के रूप में पिता की सम्पत्ति में से कुछ पाने का अधिकार लड़कियों को ऋषियों ने दिया है परन्तु वह स्वेच्छा से ही, बाध्य होकर नहीं क्योंकि वही संविधान सर्वोत्तम माना जायगा जिसे देश की जनता स्वेच्छा से अर्थात प्रसन्नता से पालन करे और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि संविधान में नैतिकता की प्रधानता हो।

प्राचीन भारत में ऋषियों ने ऐसा ही संविधान बनाया था जिसमें नैतिकता की इतनी प्रधानता थी कि लोग दान दहेज या धन के नाम पर प्रसन्नता से अपने जीवन में आचरण करते थे। यही है विवाह में बेटी और दामाद को दहेज देने का अभिप्राय और यही शिक्षा मिलती है महाराज हिमांचल के द्वारा अपनी बेटी पार्वती को दहेज देने से।

चौ०—जननी उमा बोलि तब लीन्हीं, लै उछंग सुन्दर सिख दीन्हीं।

तब माता मयना ने उमा को बुलाया और गोद में बैठाकर सुन्दर शिक्षा दिया। हे बेटी! सदा शंकर के चरणों की पूजा करना। नारी धर्म में पति से बढ़कर दूसरा कोई नहीं होता है। इस प्रकार अनेकों प्रकार से अपनी बेटी उमा को शिक्षा एवं आशीर्वाद देकर मयना ने गद्‌गद हृदय से बिदा किया। उमा भी बार-बार अपनी माँ के हृदय से लिपट जाती हैं। उस समय वहाँ सब कुछ करुणामय हो गया। सब स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि विधाता ने स्त्रियों को क्यों बनाया क्योंकि 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' माता मयना अत्यंत व्याकुल हो उठीं परन्तु कुअवसर जानकर धीरज धारण किया। उमा भी सब स्त्रियों से मिलने के बाद पुनः माता मयना के हृदय से लिपट गई और माता से मिल कर पुनः सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया। बार-बार माता को देखती हैं तब सखियाँ उमा को लेकर शिव के पास चलीं।

भारतीय संस्कृति में यह अवसर जबकि किसी की कन्या अपने माता पिता से बिछुड़ कर पति के कुल में जा रही हो तो बहुत ही करुणा और विरह का होता है। ऐसे अवसर पर बड़े-बड़े धीर पुरुष भी विचलित हो उठते हैं। उनका हृदय भी करुणा विरह से द्रवित हो उठता है। वह समय ऐसा सुख-दुख मिश्रित होता है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योंकि जहाँ एक ओर वह नवविवाहिता कन्या अपने माता-पिता से बिछुड़ रही है वहीं दूसरी और सदा-सदा के लिये पतिकुल से जुड़ने जा रही है। उस समय वहाँ उपस्थित सभी लोग हर्ष और विषाद के ऐसे थपेड़े खा रहे होते हैं कि किसी से कुछ कहते नहीं बनता है। विशेष रूप से कन्या के माता-पिता, भाई बान्धव एवं कन्या के प्रियजनों की दशा तो उस समय अति ही विचित्र होती है क्योंकि जहाँ एक ओर कन्या के माता-पिता भाई बान्धवों को यह देखकर अपार प्रसन्नता होती है कि हमारी बेटी या हमारी बहिन अपने अनुरूप सुन्दर पति को प्राप्त करके बहुत ही सुखमय दाम्पत्य जीवन आरम्भ करने जा रही हैं वहीं बिछुड़ने का महान कष्ट भी होता है। इस भारतीय संस्कृति में माता-पिता अपनी कन्या को जन्म से ही बड़े लाड़ प्यार से पालते हैं और साथ ही साथ यह भी अभिलाषा करते हैं कि जब यह सयानी हो जायगी तब धर्मपूर्वक वेदमन्त्रों के द्वारा अग्नि की साक्षी में इसे सुन्दर वर के हाथ में हम कन्या दान करेंगे।

इस वैदिक परम्परा में कन्या दान एक महान यज्ञ या महादान माना जाता है इसलिये माता-पिता अपनी बेटी की एवम् उसकी पवित्रता की बहुत ही सावधानी के साथ रक्षा करते हैं और बड़ी हो जाने पर उसके अनुरूप वर ढूंढ़ करके विधिवत उस वर के हाथ अपनी कन्या को दान कर देते हैं। जैसे दान की हुई वस्तु पर दानकर्त्ता का अधिकार समाप्त हो जाता है वैसे ही माता-पिता का अधिकार भी कन्या दान के बाद कन्या पर से समाप्त हो जाता है और तब से दान लेने वाले पति का पूर्ण अधिकार हो जाता है। उसी दिन से वह नवविवाहिता कन्या अपने पति को सर्वस्व मानकर जीवन भर सेवा करती है। पति भी अपना सब कुछ जो भी उसके पास है या भविष्य में होता है पत्नी को सौंप देता है। इस प्रकार पत्नी-पति की सेवा करना अपना धर्म समझती है और पति सब प्रकार से अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना अपना धर्म समझता है क्योंकि धर्म ही तो सुख का जन्म दाता है इसलिये पति-पत्नी के जीवन में धर्म की ही प्रधानता होनी चाहिए। यदि सुख को ही प्रधान समझ कर पति-पत्नी का सबंध जुड़ेगा तो यह निश्चित है कि वह संबंध आजीवन नहीं रह सकेगा क्योंकि शारीरिक सुख सनातन तो होता नहीं, जब तक शरीर स्वस्थ और सुन्दर है या जब तक मन में एक दूसरे के लिये आकर्षण है तभी तक सुख रहता है और शरीर के अस्वस्थ होने के कारण से या कुरूप हो जाने के कारण से या किसी विशेष कारण से जहाँ मन का आकर्षण समाप्त हुआ बस सुख भी समाप्त हो जाता है और तभी पति पत्नी का संबंध भी समाप्त हो जाता है। परन्तु धर्म तो सनातन है और सुख का मूल है इसलिये यदि पति-पत्नी के जीवन में धर्म की प्रधानता है तब जीवन भर सुख भी मिलता रहेगा और धर्म की तरह से संबंध भी सनातन बना रहेगा। यही है भारतीय दाम्पत्य जीवन में धर्म की प्रधानता का रहस्य।

दो०—चले संग हिमवंत तब, पहुचावन अति हेतु।
विविध भाँति परितोष करि, विदा कीन्ह वृषकेतु ॥ (१।१०२)

महाराज हिमांचल विशेष प्रेम के वश अपनी बेटी और दामाद को पहुँचाने के लिये चले परन्तु वृषभ केतु ने उन्हें अनेकों प्रकार से समझाया और संतुष्ट करके हिमांचल को घर के लिये विदा कर दिया।

पर्वतों के राजा हिमांचल तुरन्त लौट कर घर आए और सभी पहाड़ नदियाँ सरोवर जो अतिथि के रूप में आए हुए थे उनको बहुत प्रकार के सम्मान से हिमांचल ने बिदा कर दिया। दूसरी ओर जब भगवान शंकर बारात और पार्वती के सहित कैलाश पहुँच गए तब सभी देवता भी भगवान शिव से विदा होकर अपने-अपने लोक चले गए।

अब ग्रन्थकार कहते हैं कि शंकर और पार्वती जगत के माता-पिता हैं इसलिये इनके शृंगार का वर्णन मैंने अधिक नहीं किया। उमा और महेश्वर अनेक प्रकार से भोग विलास करते हुए गणों के सहित कैलाश में रहने लगे। हर और गिरिजा का नित्य नया बिहार होता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया तब स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ जिन्होंने तारकासुर को मारा। छः मुखवाले स्वामी कार्तिक का जन्म सारा संसार जानता है और वेद-शास्त्र-पुराण में भी प्रसिद्ध है। इसलिये मैंने वृषभकेतु के पुत्र का चरित्र संक्षेप में कहा। उमा और शम्भु का यह विवाह चरित्र जो स्त्री पुरुष कहेंगे या गावेंगे उनका कल्याण होगा। सदा उनके घर

में विवाह या विवाह जैसा मंगल कार्य होगा और सदैव वह सुख पावेगा।

दो०—चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहिं पार।
वरणै तुलसीदास किमि, अति मति मन्द गंवार।। (१।१०३)

गिरिजा के पति भगवान शिव का चरित्र समुद्रवत है जिसका वेद भी पार नहीं पा सकता है, तब भला बहुत ही मन्द बुद्धिवाला गंवार तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकता है।

यहाँ आकर सद्गुण स्वरूप देवताओं की साधना सफल हुई अर्थात् तारका सुर से त्रसित देवताओं को जो ब्रह्मा ने मन्त्रणा दिया था कि भगवान शंकर के वीर्य के द्वारा पार्वती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर, जो संदेह का प्रतीक है, का बध कर सकता है परन्तु शिव-पार्वती का विवाह तो तभी हो सकता है जब कामदेव जाकर भगवान शिव के मन में क्षोम पैदा करे और तब मैं जाकर शिव को समझा बुझा कर शिव पार्वती का विवाह करा दूंगा। इस प्रकार ब्रह्मा के उपदेश से अपना एवम् जगत के हित के लिये जो देवताओं ने साधना आरम्भ किया था उसमें देवताओं को सफलता मिली अर्थात् देवता लोग शिव-पार्वती का विवाह कराने में सफल हो गए। भगवान शिव के वीर्य के द्वारा पार्वती के गर्भ से स्वामी-कार्तिक ने जन्म लेकर संदेह का प्रतीक तारकासुर का बध भी कर दिया जिससे समस्त देव समाज सुखी हो गए।

देवताओं के प्रयास से शिव पार्वती का विवाह हुआ, विवाह के बाद स्वामीकार्तिक का जन्म, स्वामी कार्तिक के द्वारा तारकासुर का बध, पुनः गणेश का जन्म और गणेश का प्रथम पूज्य होना। इससे यह समझना चाहिए कि पार्वती श्रद्धा स्वरूपा हैं और शिव विश्वास स्वरूप हैं जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने बालकाण्ड के आरम्भ में मंगलाचरण के प्रसंग में बन्दना करते हुए कहा है :—

'भवानी शंकरौ' बन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।। (श्लोक-१।२)

अर्थ—मैं भवानी-शंकर की बन्दना करता हूँ जो श्रद्धा और विश्वास के रूप हैं, जिनकी कृपा के बिना हृदय में स्थित ब्रह्म को सिद्ध लोग भी नहीं जान सकते हैं।

अतः जब तक साधक के हृदय में श्रद्धा और विश्वास का मिलन नहीं होता है तब तक स्वामिकार्तिक जो सामान्य ज्ञान के स्वरूप हैं और गणेश जी जो विशेष ज्ञान के स्वरूप हैं इन दोनों का जन्म नहीं होता है। स्वामिकार्तिक को सामान्य ज्ञान और गणेशजी को विशेष ज्ञान कहने का मेरा अभिप्राय यह है कि ज्ञान की सात भूमिकायें होती हैं, उनमें प्रथम भूमिका से लेकर छठी भूमिका तक का ज्ञान सामान्य ज्ञान कहाता है जिसे हम शास्त्रीय ज्ञान भी कह सकते हैं। इस सामान्य ज्ञान अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान से संदेह तो दूर हो जाता है परन्तु सन्देह का जन्मदाता कुतर्क नहीं मिटता है। कुतर्क तो तभी मिटता है जब साधक के हृदय में विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है। शास्त्रीय ज्ञान से (सामान्य ज्ञान) संदेह दूर हो जाता है। तभी तो जब हमको किसी विषय पर संदेह होता है तब हम किसी शास्त्र के विद्वान के पास जाते हैं, और अपना संदेह प्रगट करते हैं। तब वह शास्त्र का विद्वान अपने शास्त्रीय ज्ञान के द्वारा

हमारा संदेह दूर कर देता है। परन्तु बड़े-बड़े शास्त्र के विद्वान भी आपस में झगड़ते रहते हैं, वाद-विवाद करते रहते हैं क्योंकि यद्यपि उन्हें किसी विषय पर सन्देह तो नहीं होता है परन्तु बड़े-बड़े शास्त्र के विद्वान के मन में भी तर्क तो होता ही है इसलिये वे आपस में तर्क-वितर्क करते रहते हैं। और यही तर्क (कुतर्क) तो जीव को ईश्वर से नहीं मिलने देता है क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति तर्क से नहीं हो सकती है। तर्क तो नाशवान वस्तु है। सांख्य दर्शन के अनुसार तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। इसलिये तर्क शक्ति से सम्पन्न पुरुष दूसरों के तर्क को नष्ट करके अपना तर्क स्थापित कर देता है परन्तु उससे भी कहीं अधिक तर्क शक्ति से सम्पन्न पुरुष पहले वाले के तर्क को नष्ट करके अपना तर्क स्थापित कर देता है। ऐसा इसलिये होता है कि तर्क नाशवान वस्तु है तभी तो एक दूसरे का तर्क एक दूसरे के द्वारा नष्ट हो जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि तर्क नाशवान वस्तु है और परमात्मा है अविनाशी नित्य सनातन। एक नाशवान अनित्य तर्क के द्वारा अविनाशी नित्य सनातन परमात्मा कैसे मिल सकते हैं। क्योंकि ऐसा नियम है कि स्वजातीय द्रव्य ही स्वजातीय द्रव्य को ग्रहण कर सकता है, विजातीय को नहीं। जैसे चुम्बक लोहा को ही ग्रहण कर सकता है अन्य धातु तांबा, पीतल, चांदी आदि को नहीं ग्रहण कर सकता है वैसे ही तर्क जो नाशवान जाति का है अपने से विजातीय (अन्य जातीय) अविनाशी परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता है। वह अविनाशी परमात्मा तो अपने स्वजातीय द्रव्य प्रेम और विश्वास के द्वारा ही मिल सकते हैं क्योंकि प्रेम और विश्वास ईश्वर की तरह ही नित्य और सनातन है। वह प्रेम और विश्वास नित्य और सनातन होने के कारण आत्म स्वरूप है। जैसे आत्मा सब में होते हुए भी अप्रगट है वैसे ही आत्म सदृश प्रेम और विश्वास सबमें है परन्तु वह अप्रगट है और जब तक वह प्रेम और विश्वास प्रगट नहीं होगा तब तक ईश्वर की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है, यह ध्रुव सत्य है। तर्क अर्थात् कुतर्क तो जीव और ईश्वर के मध्य में भयंकर नदी है। यही कारण है कि जीव उस भयंकर नदी को न पार कर सकने के कारण ईश्वर तक नहीं पहुँच पाता है। मेरा कहने का अभिप्राय है यह कि कुतर्क के रहते ईश्वरीय सत्ता या ईश्वर पर विश्वास नहीं होता है और विश्वास के बिना प्रेम उत्पन्न नहीं होता है और प्रेम भक्ति के बिना भगवान नहीं मिलते हैं। परन्तु विशेष ज्ञान के बिना कुतर्क नहीं मिटता है और वही विशेष ज्ञान गणेश जी हैं। इसे हम ज्ञान की सातवीं भूमिका भी कह सकते हैं। प्रथम भूमिका से छठी भूमिका तक सामान्य ज्ञान के मूर्त रूप स्वामिकार्तिक हैं। यही स्वामी कार्तिक के छः मुख होने का रहस्य है और सातवीं भूमिका विशेष ज्ञान के मूर्त रूप गणेश जी हैं। यही गणेश जी का सूँड से युक्त हाथी जैसा मुख का रहस्य है। हाथी रात्रि में सोते समय सूंड़ को मुख के अन्दर कर लेता है या हमेशा सूँड़ का अग्र भाग झुकाये रहता है। सूंड़ को मुख में रख कर सोना या सूँड़ को झुकाए रखने का अभिप्राय है सदैव अन्तर्मुख रहना। ज्ञानवान पुरुषों की चित्तवृत्तियाँ सदैव अन्तर्मुख रहती हैं और साथ ही गणेश जी की सवारी चूहा कुतर्क का मूर्त रूप है। इसलिये चूहा जहाँ कहीं भी रहता है वह हमेशा कुतरता अर्थात् कुछ न कुछ काटता ही रहता है क्योंकि कुतर्क जो ठहरा। अस्तु, स्वामीकार्तिक सामान्य ज्ञान हैं जिन्होंने तारकासुर का बध किया जो संदेह का मूर्त रूप था और गणेश जी विशेष ज्ञान हैं जिन्होंने कुतर्क के मूर्त रूप चूहे पर विजय

प्राप्त किया। तभी समस्त देवताओं, जो सद्गुण के प्रतीक हैं, उनमें वे प्रथम पूज्य हुए क्योंकि ज्ञान सबसे बड़ा है।

इस उपर्युक्त कथनानुसार शिव पार्वती के चरित्र से हमें यह शिक्षा मिलती है कि ईश्वर या गुरू कृपा से जब तक साधक के हृदय में श्रद्धा स्वरूपा पार्वती और विश्वास स्वरूप शिव का मिलन नहीं होता है तब तक सामान्य ज्ञान के मूर्त्त रूप स्वामीकार्तिक और विशेष ज्ञान के मूर्त्त गणेश का जन्म नहीं होता है और जब सामान्य ज्ञान के मूर्त रूप स्वामी कार्तिक और विशेष ज्ञान के मूर्त रूप गणेश का जन्म साधक के हृदय में हो जाता है तभी साधक क्रम से सन्देह और कुतर्क पर विजय प्राप्त करके अपने चरम लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त कर पाता है।

यही भगवान शिव और भगवती पार्वती का चरित्र भगवान श्रीराम के चरित्र से प्रथम लिखने या सुनाने का अभिप्राय है। भगवान शिव के चरित्र को सुनकर जब महर्षि भरद्वाज को अत्यन्त सुख मिला, आँखों में आँसू भर आए, शरीर रोमांचित हो उठा और प्रेम विवश हो जाने के कारण भरद्वाज की वाणी अवरुद्ध हो गई अर्थात् गला भर आयी तो भरद्वाज कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। तब उस दशा को देखकर महा ज्ञानी महर्षि याज्ञवल्क्य का बड़ा हर्ष हुआ और महर्षि भरद्वाज की प्रशंसा करते हुए कहने लगे हे भरद्वाज! तुमको तो प्राण के समान भगवान शिव प्रिय हैं क्योंकि भगवान शिव के चरणों में जिसकी प्रीति नहीं है वह श्रीराम को सपने में भी नहीं सुहाता है। निश्छल भाव से विश्वनाथ शिव के चरणों में प्रेम करना ही रामभक्त का लक्षण है क्योंकि शिव के समान श्रीराम को भला कौन प्रिय हो सकता है जिन्होंने कि (शिव ने) केवल सीता का रूप बना लेने पर ही सती जैसी पत्नी को त्याग दिया और कठिन प्रतिज्ञा करके रामभक्ति को सफल बनाया। शिव के समान श्रीराम को दूसरा प्रिय कौन हो सकता है। हे भरद्वाज! यद्यपि आपने मुझसे रामचरित्र सुनने की इच्छा प्रगट की थी परन्तु मैंने श्रीरामचरित्र से प्रथम शिव चरित्र सुनाकर तुम्हारा भेद जान लिया अर्थात् तुमको पहचान लिया। समस्त विकारों से रहित तुम श्रीराम के पवित्र सेवक हो।

चौ०—शम्भु चरित सुनि सरस सुहावा, भरद्वाज मुनि अति सुख पावा।
वह लालसा कथा पर बाढ़ी, नयनन्हि नीर रोमावलि ठाढ़ी।
प्रेम विवस मुख आव न बानी, दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी।
चौ०—अहो धन्य तव जन्म मुनीसा, तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा।
शिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं, रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं।
बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू, राम भगत कर लच्छन एहू।
शिव सम को रघुपति व्रतधारी, बिनु अघ तजी सती अस नारी।
पन करि रघुपति भगति देखाई, को शिव सम रामहि प्रिय भाई।
दो०—प्रथमहि मैं कहि शिवचरित, बूझा मरम तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के, रहित समस्त विकार॥ (१।१०४)

●